विषयसूचीपत्रम् ॥

पृष्ठम् विषयः

पृष्ठम् विषयः

ओ३म्

परमगुरवे परमात्मने नमः ॥

अथ संस्कृतवाक्यप्रबोधः

गुरुशिष्यवार्तालापप्रकरणम् ॥

भोः शिष्य उत्तिष्ठ प्रातःकालो जातः ।	हे शिष्य ! उठ सबेरा हुआ ।
उत्तिष्ठामि ।	उठता हूं ।
अन्ये सर्वे विद्यार्थिन उत्थिता न वा ?	और सब विद्यार्थी उठे या नहीं ?
अधुना तु नोत्थिताः खलु ।	अभी तो नहीं उठे है ।
तानपि सर्वानुत्थापय ।	उन सब को भी उठा दे ।
सर्वे उत्थापिताः ।	सब उठा दिये ।
सम्प्रत्यस्माभिः किं कर्त्तव्यम् ?	इस समय हम को क्या करना चाहिये ?
आवश्यकं शौचादिकं कृत्वा सन्ध्यावन्दनम् ।	आवश्यक शरीरशुद्धि करके संध्योपासना ।
आवश्यकं कृत्वा सन्ध्योपासिताऽतः परमस्माभिः किं करणीयम् ?	आवश्यक कर्म्म करके सन्ध्योपासन कर लिया इस के आगे हम को क्या करना चाहिये ?
अग्निहोत्रं विधाय पठत ।	अग्निहोत्र करके पढ़ो ।
पूर्वं किं पठनीयम् ?	पहिले क्या पढ़ना चाहिये ?
वर्णोच्चारणशिक्षामधीध्वम् ।	वर्णोच्चारणशिक्षा को पढ़ो ।
पश्चात्किमध्येतव्यम् ?	पीछे क्या पढ़ना चाहिये ?
किंचित्संस्कृतोक्तिबोधः क्रियताम् ।	कुछ संस्कृत बोलने का ज्ञान किया जाय ।
पुनः किमभ्यसनीयम् ?	फिर किसका अभ्यास करना चाहिये ?

नामनिवासस्थानप्रकरणम् ॥

तव किन्नामास्ति ?
देवदत्तः ।
कोऽभिजनो युवयोर्वर्त्तते ?
कुरुक्षेत्रम् ।
युष्माकं जन्मदेशः को विद्यते ?
पञ्चालाः ।
भवन्तः कुत्रत्याः ?
वयं दाक्षिणात्याः स्मः ।
तत्र का पू-र्वः ?
मुम्बापुरी ।
इमे क्व निवसन्ति ?
नयपाले ।
अयं किमधीते ?
व्याकरणम् ।
त्वया किमधीतम् ?
न्यायशास्त्रम् ।
अयं भवदीयश्छात्रः किं मचर्षयति ?
ग्वेदम् ।
किं कर्तुं गच्छसि ?
य । व्रजामि
ादधीषे ?
त्तात् ।
तोऽधीयते ?
मित्रात् ।
इति कियन्तः संवत्सरा व्यतीताः ?
वार्षिकः ?

तेरा क्या नाम है ।
देवदत्त ।
तुम दोनों का जन्मदेश कौन है ?
कुरुक्षेत्र देश ।
तुम्हारा जन्मदेश कौन है ?
पञ्जाब ।
आप कहां के हो ?
हम दक्षिणी हैं ।
वहां आप के निवास की कौन नगरी है ?
मुम्बई ।
ये लोग कहां रहते हैं ?
नयपाल में ।
यह क्या पढ़ता है ?
व्याकरण को ।
तूने क्या पढ़ा है ?
न्यायशास्त्र ।
यह आप का विद्यार्थी क्या पढ़ता है ?
ऋग्वेद को ।
तू क्या करने को जाता है ?
पढ़ने के लिये जाता हूं ।
किस से पढ़ता है ?
यज्ञदत्त से ।
ये किस से पढ़ते हैं ?
विष्णुमित्र से ।
तुम को पढ़ते हुये कितने वर्ष बीते ,
पांच ।
आप कितने वर्ष के हुए ?

त्रयोदशवार्षिकः ।	तेरह वर्ष के ।
त्वया पठनारम्भः कदा कृतः ?	तूने पढ़ने का आरम्भ कब किया था ?
यदाहमष्टवार्षिकोऽभूवम् ।	जब मैं आठ वर्ष का हुआ था ।
तव मातापितरौ जीवतो न वा ?	तेरे माता पिता जीते हैं वा नहीं ?
जीवतः ।	जीते हैं ।
तव कति भ्रातरो भगिन्यश्च ?	तेरे कितने भाई और बहिन हैं ?
त्रयो भ्रातरश्चैका भगिन्यस्ति ।	तीन भाई और एक बहिन है ।
तेषु त्वं ज्येष्ठस्ते, सा, वा ?	उन में तू ज्येष्ठ वा तेरे भाई अथवा बहिन ?
अहमेवाग्रजोऽस्मि ।	मैं ही सब से पहिले जन्मा हूं ।
तव पितरौ विद्वांसौ न वा ?	तेरे माता पिता विद्या पढ़े हैं वा नहीं ?
महाविद्वांसौ स्तः ।	बड़े विद्वान् हैं ।
तर्हि त्वया पित्रोः सकाशात्कुतो न विद्या गृहीता ?	तो तूने माता पिता से विद्या ग्रहण क्यों न की ?
अष्टमवर्षपर्य्यन्तं कृता ।	आठवें वर्ष पर्यन्त की थी ।
अत ऊर्ध्वं कुतो न कृता ?	इस से आगे क्यों न की ?
मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेदेति शास्त्र विधेः ।	माता पिता से आठवें वर्ष पर्यन्त इस के आगे आचार्य से पढ़ने का शास्त्र में विधान है इस से ।
अन्यच्च गृहे कार्यबाहुल्येन निरन्तरमध्ययनमेव न जायते ।	और भी घर में बहुत काम होने से निरन्तर पढ़ना ही नहीं होता ।
अतःपरं कियद्वर्षपर्यन्तमध्येष्यसे ?	इस के आगे कितने वर्ष पर्यन्त पढ़ेगा ?
पञ्चात्रिंशद्वर्षाणि ।	पैंतीस वर्ष तक ।

गृहाश्रमप्रकरणम् ॥

पुनस्ते का चिकीर्षास्ति ?	फिर तुझको क्या करने की इच्छा है ?
गृहाश्रमस्य ।	गृहाश्रम की ।
किंच भोः पूर्णविद्यस्य जितेन्द्रियस्य परोपकारकरणायसंन्यासाश्रम ग्रहणं	क्यों भी ! जिस को पूर्ण विद्या और जो जितेन्द्रिय है उस को परोपकार करने

शास्त्रोक्तमस्ति तन्न करिष्यसि ?	के लिये संन्यासाश्रम का ग्रहण करना शास्त्रोक्त है इस को न करोगे ?
किं गृहाश्रमे परोपकारो न भवति ?	क्या गृहाश्रम में परोपकार नहीं होता ?
यादृशः सन्न्यासाश्रमिणा कर्तुं शक्यते न तादृशो गृहाश्रमिणाऽनेककार्यैः प्रतिबन्धकत्वेनाऽस्य सर्वत्र भ्रमणादाक्षमत्वात् ।	जैसा संन्यासाश्रमी से मनुष्यों का उपकार हो सकता है वैसा गृहाश्रमी से नहीं हो सकता क्योंकि अनेक कामों की रुकावट से इसका सर्वत्र भ्रमण ही नहीं हो सकता।

भोजनप्रकरणम् ॥

नित्यः स्वाध्यायो जातो भोजनसमय आगतो गन्तव्यम् ।	नित्य का पढ़ना पढ़ाना होगया, भोजनसमय आया चलना चाहिये ।
तव पाकशालायां प्रत्यहं भोजनाय किं किं पच्यते ?	तुम्हारी पाकशाला में प्रतिदिन भोजन के लिये क्या २ पकाया जाता है ?
शाकसूपक्वथितौदनापूपादयः ।	शाक, दाल, कढ़ी, भात, पुआ और रोटी आदि ।
किं वः पायसादिमधुरेषु रुचिर्नास्ति ?	क्या आप लोगों की खीर आदि मीठे भोजनों में रुचि नहीं है ?
अस्ति खलु परन्त्वेतानि कदाचित् २ भवन्ति ।	है सही परन्तु ये भोजन कभी २ होते हैं।
कदाचिच्छष्कुलीश्रीखण्डादयोऽपि भवन्ति न वा ?	कभी पूरी कचौड़ी शिखरन आदि भी होते हैं वा नहीं ?
भवन्ति परन्तु यथर्तुयोगम् ।	होते हैं परन्तु जैसा ऋतु का योग हो ।
सत्यमस्माकमपि भोजनादिकमेवमेव निष्पद्यते ।	ठीक है हमारे भी भोजन आदि ऐसे ही बनते हैं ।
त्वं भोजनं करिष्यसि न वा ?	तू भोजन करेगा वा नहीं ?
अद्य न करोम्यजीर्णतास्ति ।	आज नहीं करूंगा अजीर्णता है ।
अधिकभोजनस्येदमेव फलम् ।	अधिक भोजन का यही फल है ।

बुद्धिमता तु यावज्जीर्यते तावदेव भुज्यते ।	बुद्धिमान् पुरुष तो जितना पचे उतना ही खाता है ।
अतिस्वल्पे भुक्ते शरीरबलं ह्रसत्यधिके चातः सर्वदा मिताहारी भवेत् ।	बहुत कम और अत्यधिक भोजन करने से शरीर का बल घटता है इस से सब दिन मिताऽऽहारी होवे ।
योऽन्यथाऽऽहारव्यवहारौ करोति स कथं न दुःखी जायेत ?	जो उलट पलट आहार और व्यवहार करता है वह क्यों न दुःखी होवे ।
येन शरीरात्प्राप्य श्रमो न क्रियते स नैव शरीरसुखमाप्नोति ।	जो शरीर को प्राप्त होकर परिश्रम नहीं करता वह शरीर के सुख को प्राप्त नहीं होता ।
येनात्मना पुरुषार्थो न विधीयते तस्यात्मनो बलमपि न जायते ।	जो आत्मा से पुरुषार्थ नहीं करता उस को आत्मा का बल भी नहीं होता ।
तस्मात्सर्वैर्मनुष्यैर्यथाशक्ति सत्क्रिया नित्य साधनीया ।	इस से सब मनुष्यों को यथाशक्ति उत्तम कर्मों की साधना नित्य करनी चाहिये ।
भो देवदत्त ! त्वामहं निमन्त्रये ।	हे देवदत्त मैं तुम्हारा निमंत्रण करता हूं ।
मन्येऽहं कदा खल्वागच्छेयम् ?	मैं मानता हूं परन्तु किस समय आऊं ?
श्वो द्वितीयप्रहरमध्ये आगन्तव्यम् ।	कल दोपहर दिनचढ़े आना चाहिये ।
आगच्छ भो आसनमध्यास्स्व ।	हे सुजन ! आइये आसन पर बैठिये ।
भवता ममोपरि महती कृपा कृता ।	आप ने मुझ पर बड़ी कृपा की ।

देशदेशान्तरप्रकरणम् ॥

भवानेतान् जानातीमे महाविद्वांसः सन्ति ।	आप इन को जानते हैं ये बड़े विद्वान् हैं ।
किन्नामान एते कुत्रस्थाः खलु ?	इन के क्या नाम और ये कहां २ के रहने वाले हैं ?
अयं यज्ञदत्तः काशीनिवासी ।	यह यज्ञदत्त काशी में निवास करता है ।
विष्णुमित्रोऽयं कुरुक्षेत्रे वास्तव्यः ।	यह विष्णुमित्र कुरुक्षेत्र में बसता है ।
सोमदत्तोयं माथुरः ।	यह सोमदत्त मथुरा में रहता है ।
अयं सुशर्मा पर्वतीयः ।	यह सुशर्म्मा पर्वत में रहता है ।

अयमाश्वलायनो दाक्षिणात्योऽस्ति ।	यह आश्वलायन दक्षिणी है ।
अयं जयदेवः पाश्चात्यो वर्तते ।	यह जयदेव पश्चिम देशवासी है ।
अयं कुमारभट्टो वाङ्गो विद्यते ।	यह कुमारभट्ट बंगाली है ।
अयं कापिलेयः पाताले निवसति ।	यह कापिलेय पाताल अर्थात् अमेरिका में रहता है ।
अयं चित्रभानुर्हरिवर्षस्थः ।	यह चित्रभानु हिमालय से उत्तर हरिवर्ष अर्थात् युरोप में रहता है ।
इमौ सुकामसुभद्रौ चीननिकायौ ।	ये सुकाम और सुभद्र चीन के वासी हैं ।
अयं सुमित्रो गन्धारस्थायी ।	यह सुमित्र गन्धार अर्थात् काबिल कन्धार का रहने वाला है ।
अयं सुभटो लङ्काजः ।	यह सुभट लंका में जन्मा है ।
इमे पंच सुवीरानिलसुकर्मसुधर्मशतधन्वानो मारवाः ।	सुवीर, अनिबल, सुकर्मा, सुधर्मा और शतधन्वा ये पांच मारवाड़ के रहने वाले हैं ।
एते मया आमन्त्रिताः स्वस्वस्थानादागताः ।	ये सब मेरे बुलाये हुए अपने २ घर से आये हैं ।
इमे शिवकृष्णगोपालमाधवसुचन्द्रमकरभूदेवचित्रसेनमहारथा मध्यस्थाः ।	शिव, कृष्ण, गोपाल, माधव, सुचन्द्र, मकर, भूदेव, चित्रसेन और महारथ, ये सब इस मध्यदेश के रहने वाले हैं ।
अहोभाग्यं मे यद् भवत्कृपयैतेषामपि समागमो जातः ।	मेरा बड़ा भाग्य है कि जो आप की कृपा से इन सत्पुरुषों का भी मिलाप हुआ ।
अहमपि सभवतः सर्वानेतान्निमन्त्रयितुमिच्छामि ।	मैं भी आप के सहित इन सब का निमन्त्रण करना चाहता हूं ।
अस्माभिर्भवन्निमन्त्रणमङ्गीकृतम् ।	हमने आप का निमन्त्रण स्वीकार किया ।
प्रीतोऽस्मि परन्तु भवद्भोजनार्थं किं किं पक्तव्यम् ?	आप के निमन्त्रण मानने से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु आप के भोजन के लिये क्या क्या पकाया जाय ?
यद्यद्भोक्तुमिच्छास्ति तत्तदाज्ञापयन्तु ।	जिस २ पदार्थ के भोजन की इच्छा हो उस २ की आज्ञा कीजिये ।

भवान् देशकालज्ञः कथनेन किं यथायोग्यमेव पक्तव्यम् ।	आप देशकाल को जानते हैं कहने से क्या यथायोग्य ही पकाना चाहिये ।
सत्यमेवमेव करिष्यामि ।	ठीक है ऐसा ही करूंगा ।
उत्तिष्ठत भोजनसमय आगतः पाकः सिद्धो वर्त्तते ।	उठिये भोजनसमय आया पाक तैयार है ।
भो भृत्य ! पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं जलं देहि ।	हे नौकर ! इन को पग हाथ मुख धोने के लिये जल दे ।
इदमानीतं गृह्यताम् ।	यह लाया लीजिये ।
भोः पाचकाः सर्वान् पदार्थान् क्रमेण परिवेविष्ट ।	हे पाचक लोगो ! सब पदार्थों को क्रम से परोसो ।
भुञ्जीध्वम् ।	भोजन कीजिये ।
भोजनस्य सर्वे पादार्थाः श्रेष्ठा जाता न वा ?	भोजन के सब पदार्थ अच्छे हुए हैं वा नहीं ?
अत्युत्तमाः सम्पन्नाः किं कथनीयम् ।	क्या कहना है बड़े उत्तम हुए हैं ।
भवता किंचित् पायसं ग्राह्यं वा यस्येच्छाऽस्ति ।	आप थोड़ी सी खीर लीजिये वा जिस की इच्छा हो ।
प्रभूतं भुक्तं तृप्ताः स्मः ।	बहुत रुचि से भोजन किया तृप्त हो गये हैं ।
तदुत्तिष्ठत ।	तो उठिये ।
जलं देहि ।	जल दे ।
गृह्यताम् ।	लीजिये ।
ताम्बूलादीन्यानीयताम् ।	पान बीड़े इलायची आदि लाओ ।
इमानि सन्ति गृह्णन्तु ।	ये हैं लीजिये ।

सभाप्रकरणम् ॥

इदानीं सभायां काचिच्चर्चा विधेया ।	अब सभामें कुछ वार्तालाप करना चाहिये ।
धर्म्मः किंलक्षणोऽस्तीति पृच्छामि ?	मैं पूछता हूं कि धर्म्म का क्या लक्षण है ?

वेदप्रतिपाद्यो न्याय्यः पक्षपातरहितो यश्च परोपकारसत्याऽऽचरणलक्षणः ।	वेदोक्त न्यायानुकूल पक्षपातरहित और जो पराया उपकार तथा सत्याचरण युक्त है उसी को धर्म जानना चाहिये ।
ईश्वरः कोऽस्तीति ब्रूहि ?	ईश्वर किसको कहते हैं आप कहिये ?
यः सच्चिदानन्दस्वरूपः सत्यगुणकर्मस्वभावः ।	जो सच्चिदानन्दस्वरूप और जिस के गुण कर्म स्वभाव सत्य ही हैं वह ईश्वर कहाता है ।
मनुष्यैः परस्परं कथं वर्त्तितव्यम् ?	मनुष्यों को एक दूसरे के साथ कैसे २ वर्त्तना चाहिये ?
धर्मसुशीलतापरोपकारैः सह यथायोग्यम् ।	धर्म, श्रेष्ठ स्वभाव और परोपकार के साथ जिसमें जैसा व्यवहार करना योग्य हो वैसाही उनसे वर्त्तना चाहिये ।

आर्यावर्त्तचक्रवर्त्तिराजप्रकरणम् ॥

अस्मिन्नार्य्यावर्त्ते पुरा के के चक्रवर्त्तिराजा अभूवन् ?	इस आर्यावर्त्त देश में पहिले कौन २ चक्रवर्त्ती राजा हुए हैं ?
स्वायंभुवाद्या युधिष्ठिरपर्यन्ताः ।	स्वायम्भु से लेके युधिष्ठिर पर्यन्त ।
चक्रवर्त्तिशब्दस्य कः पदार्थः ?	चक्रवर्त्ति शब्द का क्या अर्थ है ?
य एकस्मिन् भूगोले स्वकीयाऽऽज्ञां प्रवर्त्तयितुं समर्थाः ।	जो एक भूगोल भर में अपनी राजनीतिरूप आज्ञा को चलाने में समर्थ हों ।
ते कीदृशीमाज्ञां प्राचीचरन् ?	वे कैसी आज्ञा का प्रचार करते थे ?
यया धार्मिकाणां पालनं दुष्टानां ताडनं च भवेत् ।	जिस से धार्मिकों का पालन और दुष्टों का ताड़न होवे ।

राजप्रजालक्षणराजनीत्यनीतिप्रकरणम् ॥

राजा को भवितुं शक्नोति ?	राजा कौन हो सकता है ?

यो धर्मिष्ठानां सभायां अधिपतिर्भवितुं योग्यो भवेत् ।	जो धर्मात्माओं की सभा का सभापति होने योग्य होवे ।
स. प्रजां पीडयित्वा स्वार्थं साधयेत् स राजा भवितुमर्हति न वा ?	जो प्रजा को दुःख देकर अपना प्रयोजन साधे वह राजा हो सकता है वा नहीं
नहि नहि नहि स तु दस्युरस्ति ।	नहीं नहीं नहीं वह तो डाकू ही है ।
या राजद्रोहिणी सा तु न प्रजा किन्तु स्तेनतुल्या मन्तव्या ।	जो राजव्यवहार में विरोध करे वह प्रजा तो नहीं किन्तु उस को चोर के समान जानना चाहिये ।
कीदृशाः जनाः प्रजा भवितुमर्हाः ?	कैसे मनुष्य प्रजा होने को योग्य हैं ?
ये धार्मिकाः सततं राजप्रियकारिणः ।	जो धर्मात्मा और निरन्तर राजा के प्रियकारी हों ।
राजपुरुषैरप्येवमेव प्रजाप्रियकारिभिः सदा भवितव्यम् ।	राजसम्बन्धी पुरुषों को भी वैसे ही प्रजा के प्रिय करने में सदा रहना चाहिये ।

शत्रुवशकरणप्रकरणम् ॥

एते शत्रुभिः सह कथं वर्तेरन् ?	ये लोग शत्रुओं के साथ कैसे वर्तें ?
राजप्रजोत्तमपुरुषैररयः सामदामदण्डभेदैर्वशमानेयाः ।	राजा और प्रजा के श्रेष्ठ पुरुषों को योग्य है कि अरियों को (साम) मिलाप (दाम) गुप्तदण्ड और (दण्ड) उनको दण्ड (भेद) आपस में उनको फोड़ देना उन से वश में करना चाहिये ।
सदा स्वराज्यप्रजासेनाकोशधर्मविद्यासुशिक्षा वर्द्धनीयाः ।	सब दिन अपना राज्य, प्रजा, सेना, कोष, धर्म्म, विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा बढ़ाते रहना चाहिये ।
यथाऽधर्माविद्या दुष्टशिक्षादस्युचोरादयो न वर्द्धेरंस्तथा सततमनुष्ठेयम् ।	जिस प्रकार से अधर्म, अविद्या, बुरी शिक्षा, डाकू और चोर आदि न बढ़ें वैसा निरन्तर पुरुषार्थ करना चाहिये ।

धार्मिकैः सह कदापि न योद्धव्यम् ।	धर्मात्माओं के साथ कभी लड़ाई न करनी चाहिये ।
निर्जिता अपि दुष्टा विनयेन सत्कर्त्तव्याः ।	पराजित किये शत्रुओं का भी विनय के साथ मान्य करना चाहिये ।
राजप्रजाजनाः प्राणवत् परस्परं संपोष्य सुखिनो भवन्तु ।	राजा और प्रजा प्राण के तुल्य एक दूसरे की पुष्टि करके सदा सुखी रहें ।
कर्षिते क्षयरोगवदुभे विनश्यतः ।	एक दूसरे को निर्बल करने से दमा रोग के समान दोनों निर्बल होकर नष्ट हो जाते हैं ।
सदा ब्रह्मचर्येण विद्यया च शरीरात्मबलं वर्धनीयम् ।	सब काल में ब्रह्मचर्य और विद्या से शरीर और आत्मा का बल बढ़ाते रहना चाहिये ।
यथा देशकालं पुरुषार्थेन यथावत् कर्माणि कृत्वा सर्वथा सुखयितव्यम् ।	देश काल के अनुसार उद्यम से ठीक २ कर्म करके सब प्रकार सुखी रहना चाहिये ।

वैश्यव्यवहारप्रकरणम् ॥

वैश्याः कथं वर्त्तेरन् ?	बनिये लोग कैसे बर्तें ?
सर्वां देशभाषां लेखाव्यवहारं च विज्ञाय पशुपालनक्रयविक्रयादिव्यापारकुसीदवृद्धिकृषिकर्माणि धर्मेण कुर्वन्तः ।	सब देशभाषा और हिसाब को ठीक २ जान कर पशुओं की रक्षा लेन देन आदि व्यवहार ब्याजवृद्धि और खेती कर्म धर्म के साथ करते हुए ।

कुसीदग्रहणप्रकरणम् ॥

यद्येकवारं दद्यात् गृह्णीयाच्च तर्हि कुसीदवृद्ध्या द्वैगुण्ये धर्मोऽधिकेऽधर्म इति वेदितव्यम् ।	जो एक बार दें लें तो ब्याजवृद्धिसहित मूल धन द्विगुण तक लेने में धर्म और अधिक लेने में अधर्म होता है ऐसा जानना चाहिये ।

मासिकार्थं मासिकं वा यदि कुर्यात् वृद्धिं वा-र्षिकं तदा सपूर्वं द्विगुणं धनमागच्छेत्तदा मूलमपि त्याज्यम् ।	जो महीने २ में अथवा वर्ष २ में व्याज लेना जाय तो जब दूना धन आजाय फिर आगे कुछ भी न लेना चाहिये ।

नौकाविमानादिचालनप्रकरणम् ॥

त्वं नौकाश्चालयसि न वा ?	तू नाव चलाता है वा नहीं ?
चालयामि ।	चलाता हूं ।
नदीषु वा समुद्रेषु ?	नदियों अथवा समुद्रों में ?
उभयत्र चालयामि ।	दोनों में चलाता हूं ।
कस्यान्दिशि कस्मिन्देशे गच्छन्ति ?	किस दिशा और किस देश में जाती हैं ?
सर्वासु दिक्षु पातालदेशपर्य्यन्तम् ।	सब दिशाओं में पातालदेश अर्थात् एमेरिका देश पर्य्यन्त ।
ताः कीदृश्यः सन्ति केन चलन्ति ?	वे नौका कैसी और किससे चलती हैं ?
कैवर्त्तवाय्वग्निजलकलाबाष्पादिभिः ।	मल्लाह वायु अग्नि जल कलायन्त्र और भाफ आदि से ।
याः पुरुषाश्चालयन्ति ता ह्रस्वाः या महत्यस्ता वाय्वादिभिश्चाल्यन्ते ताश्चाश्वतरीश्यामकर्णाश्वाख्याः सन्ति ।	जिन को मनुष्य चलाते हैं वे छोटी २ नौका और जो बड़ी होती हैं वे वायु आदि से चलाई जाती हैं उन के अश्वतरी और श्यामकर्णाश्व आदि नाम हैं ।
विमानादिभिरपि सर्वत्र गच्छामश्च ।	और विमान आदि से सर्वत्र आया जाया करते हैं ।

क्रयविक्रयप्रकरणम् ॥

अस्य किम्मूल्यम् ?	इस का क्या मूल्य है ?
पञ्च रूप्याणि ।	पांच रुपये ।
गृहाणेदं वस्त्रं देहि ।	लीजिये पांच रुपये यह वस्त्र दीजिये ।
अद्यत्वे घृतस्य कोऽर्घः ?	आज कल घी का क्या भाव है ?

मुद्रिकया सपादमस्थं विक्रीणते ।	एक रुपया का सवा सेर बेचते हैं ।
गुडस्य कोभावः ?	गुड़ का क्या भाव है ?
आणाभिः पणैरेकसेटकमात्रं ददति ।	दो आने का एक सेरभर देते हैं ।
त्वमापणं गच्छ एलामानय ।	तू दूकान पर जा इलायची ले आ ।
आनीता गृहाण ।	ले आया लीजिये ।
कस्य हट्टे दधिदुग्धे अच्छे प्राप्नुतः ?	किस की दूकान पर दूध और दही अच्छे मिलते हैं ?
धनपालस्य ।	धनपाल की ।
स सत्येनैव क्रयविक्रयौ करोति ।	वह सत्य ही से लेन देन करता है ।
श्रीपतिर्वणिक् कीदृशोऽस्ति ?	श्रीपति बनियां कैसा है ?
स मिथ्याकारी ।	वह झूठा है ।
अस्मिन्संवत्सरे कियांल्लाभो व्ययश्च जातः ?	इस वर्ष में कितना लाभ और खर्च हुआ ।
पंचलक्षाणि लाभो लक्षद्वयस्य व्ययश्च ।	पाचलाख रुपये लाभ और दो लाख खर्च हुए ।
मम त्वस्मिन् वर्षे लक्षत्रयस्य हानिर्जाता ।	मेरी तो इस वर्ष में तीन लाख की हानि होगई ।
कस्तूरी कस्मादानीयते ।	कस्तूरी कहां से लाई जाती है ?
नयपालात् ।	नयपाल से ।
बहुमूल्यशालादिकं कुत आनयन्ति ?	दुशाले आदि कहां से लाते है ?
कश्मीरात् ।	कश्मीर से ।

गमनागमनप्रकरणम् ॥

कुत्र गच्छसि ?	कहां जाते हो ?
पाटलिपुत्रकम् ।	पटने को ।
कदाऽऽगमिष्यसि ?	कब आओगे ?
एकमासे ।	एक महीने में ।
स क्व गतः ?	वह कहां गया ?
डाकमानेतुम् ।	डाक लेन को ।

क्षेत्रवपनप्रकरणम् ॥

क्षेत्राणि कर्षन्तु ।	खेत जोतो ।
बीजान्युप्तानि न वा ?	बीज बोये वा नहीं ?
उप्तानि ।	बो दिये ।
अस्मिन् क्षेत्रे किमुप्तम् ?	इस खेत में क्या बोया है ?
व्रीहयः ।	धान ।
एतस्मिन् ?	इस में ?
गोधूमाः ।	गेहूं ।
अस्मिन् किं वपन्ति ?	इस खेत में क्या बोते हैं ।
तिलमुद्गमाषाढकीः ।	तिल मूंग उड़द और आहर ।
एतस्मिन् किमुप्यते ?	इस में क्या बोया जाता है ?
यवाः ।	जौ ।

शस्यच्छेदनप्रकरणम् ॥

संप्रति केदाराः पक्वाः ।	इस समय खेत पक गये हैं ।
यदि पक्वाः स्युस्तर्हि लुनन्तु ।	जो पक गये हों तो काटो ।
इदानीं कृषीवला अन्योन्यं केदारान् व्यतिलुनन्ति ।	इस समय खेती करने वाले आपस में एक दूसरे का पारापारी खेत काटते हैं ।
ऐषमो धान्यानि प्रभूतानि जातानि ।	इस साल में धान्य बहुत हुए हैं ।
अत एवैकस्या मुद्राया गोधूमाः खारीप्रमिता अन्यानि तण्डुलादीन्यपि किञ्चिदधिकन्यूनानि मिलन्ति ।	इसी से एक रुपये के गेहूं एक मन और चावल आदि अन्न भी मन से कुछ अधिक न्यून मिलते हैं ।

गवादिदोहनपरिमाणप्रकरणम् ॥

इयं गौर्दुग्धं ददाति न वा ?	यह गौ दूध देती है वा नहीं ?

ददाति ।	देती है ।
इयं महिषी कियद् दुग्धं ददाति ?	यह भैंस कितना दूध देती है ?
दशप्रस्थाः ।	दश सेर ।
तवाऽजावयः सन्ति न वा ?	तेरे बकरी भेड़ हैं वा नहीं ?
सन्ति ।	हैं ।
प्रतिदिनं ते कियद् दुग्धं जायते ?	नित्य तेरे कितना दूध होता है ?
पञ्च खार्यः ।	पांच मन ।
नित्यं किंपरिमाणे घृतनवनीते भवतः ?	प्रतिदिन कितना घी और मक्खन होता है ?
सार्द्धद्वादशप्रस्थे ।	साढ़े बारह सेर ।
प्रत्यहं कियद् भुज्यते कियच्च विक्रीयते ।	प्रतिदिन कितना खाया जाता और कितना विकता है ?
सार्द्धद्विप्रस्थं भुज्यते दशप्रस्थं च विक्रीयते ।	अढ़ाई सेर खाया जाता और दश सेर विकता है ।

क्रयविक्रयार्घप्रकरणम् ॥

एतद्रूप्यकेन कियद् मिलति ?	ये घी और मक्खन एक रुपया का कितना मिलता है ?
त्रित्रिप्रस्थम् ।	तीन तीन सेर ।
तैलस्य कियत् मूल्यम् ?	तेल का क्या मूल्य है ?
मुद्रापादेन सेटकद्वयं प्राप्यते ।	चार आने का दो सेर मिलता है ।
अस्मिन्नगरे कति हट्टास्सन्ति ?	इस नगर में कितनी दुकानें हैं ?
पञ्च सहस्राणि ।	पांच हजार ।

कुसीद प्रकरणम् ॥

शतं मुद्रा देहि ।	सौ रुपये दीजिये ।

ददामि परन्तु कियत् कुसीदं दास्यसि ।	दूंगा परन्तु कितना व्याज देगा ।
प्रतिमासं मुद्रार्द्धम् ।	प्रति महीने आठ आना ।

उत्तमर्णाधमर्णप्रकरणम् ॥

भो अधमर्ण ! यावद्धनं त्वया पूर्वं गृहीतं तदिदानीं देहि ।	हे ऋणिया ! जो धन तूने पहिले था वह अब दे ।
मम सांप्रतं तु दातुं सामर्थ्यं नास्ति ।	मेरा इस समय तो देने को सामर्थ्य न
कदा दास्यसि ?	कब देगा ?
मासद्वयाऽनन्तरम् ।	दो महीने के पीछे ।
यद्येतावति समये न दास्यसि चेत्तर्हि राजनियमाद्ग्रहीष्यामि ।	जो तू इतने समय में न देगा तो राजप्रबन्ध से पकड़ा के लूंगा ।
यद्येवं कुर्य्यां तर्हि तथैव ग्रहीतव्यम् ।	जो ऐसा करूं तो वैसे ही लेना ।

राजप्रजासम्बन्धप्रकरणम् ॥

भो राजन् ! ममायमृणं न ददाति ।	हे राजन् ! मेरा यह ऋण नहीं देता
यदा तेन गृहीतं तदानीन्तनः कश्चित् साक्षी वर्त्तते न वा ?	जब उसने लिया था उस समय का साक्षी वर्त्तमान है या नहीं ?
अस्ति ।	है ।
तर्ह्यानय ।	तो लाओ ।
आनीतोऽयमस्ति ।	लाया यह है ।

साक्षिप्रकरणम् ॥

भोः साक्षिन् त्वमस्य विषये किञ्चिज्जानासि न वा ?	हे साक्षी ! तू इस विषय में कुछ जानता है या नहीं ?

जानामि ।	जानता हूं ।
यादृशं जानासि तादृशं सत्यं ब्रूहि ।	जैसा जानता है वैसा सच कह ।
सत्यं वदामि ।	सत्य कहता हूं ।
अस्मादनेन मत्समक्षे सहस्रं मुद्रा गृहीताः ।	इस से इसने मेरे सामने सहस्र रुपये लिये थे
भो भृत्य ! तं शीघ्रमानय ।	हो नौकर ! उस को जल्दी लेआ ।
आनयामि ।	लाता हूं ।
गच्छ राजसभायां राज्ञा त्वमाहूतोऽसि ।	चल राजसभा में राजा ने तुझ को बुलाया है ।
चलामि ।	चलता हूं
भो राजन्नुपस्थितस्तम् ।	हे राजन् ! वह आया है ।
त्वयाऽस्यर्णं कुतो नादायि ?	तू ने इस का ऋण क्यों नहीं दिया ?
अस्मिन् समये तु मम सामर्थ्यं नास्ति षण्मासानन्तरं दास्यामि ।	इस समय तो मेरा सामर्थ्य नहीं है परन्तु छः महीने के पीछे दूंगा ।
पुनर्विलम्बन्तु न करिष्यसि ।	फिर देर तो न करेगा ।
महाराज ! कदापि न करिष्यामि ।	महाराज ! कभी न करूंगा ।
अस्तु गच्छ धनपाल यदि सप्तमे मास्ययं न दास्यति तर्ह्येनं निगृह्य दापयिष्यामि ।	अच्छा जाओ धनपाल जो यह सातवें महीने में न देगा तो इस को पकड़ के दिलाऊंगा ।
अयं मम शतं मुद्रा गृहीत्वाऽधुना न ददाति ।	यह मेरे सौ रुपये लेके अब नहीं देता ।
किं च भो यदयं वदति तत् सत्यं न वा ?	क्यों जी जो यह कहता है, वह सच है वा नहीं ?
मिथ्यैवाऽस्ति ।	झूंठ ही है ।
अहन्तु जानाम्यपि नाऽस्य मुद्रा मया कदा स्वीकृताः ।	मैं तो जानता भी नहीं कि इस के रुपये मैंने कब लिये थे ।
उभयोस्साक्षिणः सन्ति न वा ?	दोनों के साक्षी लोग हैं वा नहीं ?
सन्ति ।	हैं ।

कुत्र वर्त्तन्ते ?	कहां वर्तमान हैं ?
इम उपतिष्ठन्ते ।	ये खड़े हैं ।
अनेन युष्माकं समक्षे शतं मुद्रा दत्ता न वा ?	इसने तुम्हारे सामने सौ रुपये दिये वा नहीं ?
दत्तास्तु खलु ।	निश्चित दिये तो हैं ।
अनेन शतं मुद्रा गृहीता न वा ?	इसने सौ रुपये लिये वा नहीं ?
वयं न जानीमः ।	हम नहीं जानते ।
प्राड्विवाकेनोक्तम् ।	वकील ने कहा ।
अयमस्य साक्षिणश्च सर्वे मिथ्यावादिनः सन्ति ।	यह और इसके साक्षी लोग सब झूंठ बोलने वाले हैं ।
कुत इदमेतेषां परस्परं विरुद्धवचोऽस्ति ।	क्योंकि यह इन लोगों का वचन परस्पर विरुद्ध है ।
यतस्त्वया मिथ्यालपितमत एव तवैकसंवत्सरपर्य्यन्तं कारागृहे बन्धः क्रियते ।	जिस से तूने झूंठ बोला इसी कारण तेरा एक वर्ष तक बन्दीघर में बन्धन किया जाता है ।
अयमुत्तमर्णस्त्वदीयान् पदार्थान् गृहीत्वा विक्रीय वा स्वर्णं ग्रहीष्यति ।	यह सेठ तेरे पदार्थों को लेकर अथवा बेंच के अपने ऋण को ले लेगा ।
अयं मदीयानि पञ्चशतानि रूप्याणि स्वीकृत्य न ददाति ।	यह मेरे पांच सौ रुपये लेकर नहीं देता ।
कुतो न ददासि ?	तू क्यों नहीं देता ?
मया नैव गृहीताः कथं दद्याम् ?	मैंने लिये ही नहीं कैसे दूं ?
अयं मम लेखोऽस्ति पश्य तम् ।	यह मेरा लेख है देखिये इस को ?
आनय ।	लाओ ।
गृह्यताम् ।	लीजिये ।
अयं लेखो मिथ्या प्रतिभाति ।	यह लेख झूंठ मालूम पड़ता है ।
तस्मात् त्वं षण्मासान् कारागृहे वस तवैमे साक्षिणश्च द्वौ द्वौ मासौ तत्रैव वसेयुः ।	इस से तू छः महीने बन्दीगृह में रह और तेरे साक्षी भी दो दो महीने वहीं रहैं ।

गमनागमनप्रकरणम् ॥

परन्तु पथ्यं सदा कर्त्तव्यं कुतो नहि पथ्येन विना रोगो निवर्त्तते ।

परन्तु पथ्य सदा करना चाहिये क्योंकि पथ्य के विना रोग निवृत्त नहीं होता ।

अयं कुपथ्यकारित्वात् सदा रुग्णो वर्त्तते ।

यह कुपथ्यकारी होने से सदा रोगी रहता है ।

अस्य पित्तकोपो वर्त्तते ।

इसको पित्त कोप है ।

मम कफो वर्द्धते औषधं देहि ।

मेरे कफ बढ़ता जाता है औषध दीजिये ।

निदानं कृत्वा दास्यामि ।

रोग की परीक्षा करके दूंगा ।

अस्य महान् कासश्वासोऽस्ति ।

इसको बड़ा कासश्वास अर्थात् दमा है ।

मम शरीरे तु वातव्याधिर्वर्त्तते ।

मेरे शरीर में तो वातव्याधि है ॥

संग्रहणी निवृत्ता न वा ?

संग्रहणी छूटी वा नहीं ?

अद्यपर्यन्तन्तु न निवृत्ता ।

आज तक तो नहीं छूटी ।

औषधं संसेव्य पथ्यं करोषि न वा ?

औषधि का सेवन करके पथ्य करते हो वा नहीं ?

क्रियते परन्तु सुवैद्यो न मिलति कश्चित् सम्यक् परीक्ष्यौषधं दद्यात् ।

करता तो हूं परन्तु अच्छा वैद्य कोई नहीं मिलता कि जो अच्छे प्रकार परीक्षा करके औषध देवे ।

तृषाऽस्ति चेज्जलं पिब ।

प्यास हो तो जल पी ।

मिश्रितप्रकरणम् ॥

इदानीं शीतं निवृत्तमुष्णसमय आगतः ।

अब तो शीत निवृत्त हुआ गरमी का समय आया ।

हेमन्ते क स्थितः ?

जाड़े में कहां रहा था ?

वङ्गेषु ।

बङ्गाल में ।

पश्य ! मेघोन्नतिं कथं गर्जति विद्युद्द्योतते च ।

देखो ! मेघ की बढ़ती कैसा गर्जता और बिजुली चमकती है ।

अद्य महती वृष्टिर्जाता यया तडागा नद्यश्च पूरिताः ।

आज बड़ी वर्षा हुई जिससे तालाब और नदियां भर गईं ।

शृणु, मयूराः सुशब्दयन्ति ।	सुनो, मोर अच्छा शब्द करते हैं ।
कस्मात् स्थानादागतः ?	किस स्थान से आया ?
जङ्गलात् ।	जङ्गल से ।
तत्र त्वया कदापि सिंहो दृष्टो न वा ?	वहां तूने कभी सिंह भी देखा था ?
बहुवारं दृष्टः ।	कई बेर देखा ।
नदी पूर्णा वर्त्तते कथमागतः ?	नदी भरी है कैसे आया ?
नौकया ।	नाव से ।
आरोहत हस्तिनं गच्छेम ।	चढ़ो हाथी पर चलें ।
अहन्तु रथेनागच्छामि ।	मैं तो रथ से आता हूं ।
अहमश्वोपरि स्थित्वा गच्छेयं शिविकायां वा ?	मैं घोड़े पर चढ़ के जाऊं अथवा पालकी पर ?
पश्य ! शारदं नभः कथं निर्मलं वर्त्तते ।	देखो शरद् ऋतु का आकाश कैसा निर्मल है ।
चन्द्र उदितो न वा ?	चन्द्रमा उगा वा नहीं ?
इदानीन्तु नोदितः खलु ।	इस समय तो नहीं उगा है ।
कीदृश्यस्तारकाः प्रकाशन्ते ।	किस प्रकार तारे प्रकाशमान हो रहे हैं ।
सूर्योदयाच्चलन्नागच्छामि ।	सूर्योदय से चलता हुआ आता हूं ।
क्वापि भोजनं कृतन्न वा ?	कहीं भोजन किया वा नहीं ?
कृतम्मध्याह्नात्प्राक् ।	किया था दो पहर से पहले ।
अधुनाऽत्र कर्त्तव्यम् ।	अब यहां कीजिये ।
करिष्यामि ।	करूंगा ।

विवाहस्त्रीपुरुषालापप्रकरणम् ॥

त्वया कीदृशो विवाहः कृतः ?	तूने किस प्रकारका विवाह किया था ?
स्वयंवरः ।	स्वयंवर ।
अनुकूलास्ति न वा ?	स्त्री अनुकूल है वा नहीं ।

सर्वथाऽनुकूलाऽस्ति ।	सब प्रकार से अनुकूल है ।
कत्यपत्यानि जातानि सन्ति ?	कितने लड़के हुए हैं ?
चत्वारः पुत्रा द्वे कन्ये च ।	चार पुत्र और दो कन्या ।
स्वामिन्नमस्ते ।	स्वामीजी, नमस्ते अर्थात् मैं आप का सत्कार करती हूं ।
नमस्ते प्रिये ।	नमस्ते प्रिया ।
कांचित्सेवामनुज्ञापय ।	किसी सेवा की आज्ञा करिये ।
सर्वैव सेवसे पुनराज्ञापनस्य कावश्यकताऽस्ति ।	सब प्रकार की सेवा करती ही हो फिर आज्ञा कराने की क्या आवश्यकता है ।
अद्य भवान्छ्रमं कृतवानतः उष्णेन जलेन स्नातव्यम् ।	आज आपने श्रम किया है इस कारण गरम जलसे स्नान करना चाहिये ।
गृहाणेदं जलमासनं च ।	लीजिये यह जल और आसन ।
इदानीं भ्रमणाय गन्तव्यम् ।	इस समय घूमने के लिये जाना चाहिये ।
क्व गच्छेव ?	कहां चलें ?
उद्यानेषु ।	बगीचों में ।

स्त्रीश्वश्रूश्वशुरादिसेव्यसेवकप्रकरणम् ॥

हे श्वश्रु ! सेवामाज्ञापय किं कुर्याम् ?	हे सास ! सेवा की आज्ञा कीजिये क्या करूं ?
सुभगे ! जलं देहि	सुभगे ! जल दे ।
गृहाणेदमस्ति ।	लीजिये यह है ।
हे श्वशुर ! भवान् किमिच्छत्याज्ञापयतु ।	हे श्वशुर ! आपकी क्या इच्छा है आज्ञा कीजिये ।
हे वशंवदे ! नित्यं सदाचारमाचर ।	हे वशंवदे ! नित्य सती स्त्रियों का आचरण कर ।

अथ ननन्दभ्रातृजायावादप्रकरणम् ॥

हे ननन्दरिहागच्छ वार्तालापं कुर्याव ।

हे ननन्द ! यहां आओ बात चीत करें

वद भ्रातृजाये ! किमिच्छसि ?

कहो भौजाई ! क्या इच्छा है ।

तव पतिः कीदृशोऽस्ति ?

तेरा पति कैसा है ?

अतीव सुखप्रदो यथा तव ।

अत्यन्त सुख देनेवाला है जैसा तेरा ।

मया त्वीदृशः पतिः सुभाग्येन लब्धोऽस्ति ।

मैंने तो इस प्रकार का पति अच्छे भाग्य से पाया है

कदाचिदप्रियं तु न करोति ?

कभी कोई बुराई तो नहीं करता ?

कदापि नहि किंतु सर्वदा प्रीतिं वर्द्धयति ।

कभी नहीं किन्तु सब दिन प्रीति बढ़ाता है ।

पश्याभ्यां बाल्यावस्थायां विवाहः कृतोऽतः सदा दुःखिनौ वर्तेते ।

देखो इन दोनों ने बाल्यावस्था में विवाह किया है इससे सदा दुःखी रहते हैं ।

यान्यपत्यानि जातानि तान्यपि रुग्णान्यग्रेऽपत्यस्याऽऽशैव नास्ति निर्बलत्वात् ।

जो लड़के हुए वे भी रोगी हैं आगे लड़का होने की आशा ही नहीं है निर्बलता से ।

पश्य तव मम च कीदृशानि पुष्टान्यपत्यानि द्विवर्षानन्तरं जायन्ते ।

देखो तेरे और मेरे कैसे पुष्ट लड़के दो वर्ष के पीछे होते जाते हैं ।

सर्वदा प्रसन्नानि सन्ति वर्द्धन्ते च सुशीलत्वात् ।

सब काल में प्रसन्न और बढ़ते जाते हैं सुशीलता से ।

नह्यस्मिन् संसारेऽनुकूलस्त्रीपतिजन्यसदृशं सुखं किमपि विद्यते ।

इस संसार में अनुकूल स्त्री और पुरुष से होनेवाले सुख के सदृश दूसरा सुख नहीं है ।

इदानीं वृद्धाऽवस्था प्राप्ता यौवनं गतं केशाः श्वेता जाताः प्रतिदिनं बलं ह्रसति च ।

इस समय वृद्धावस्था आई, जवानी गई बाल सफेद हुए और नित्य बल घटता है

स इदानीं गमनागमनमपि कर्तुमशक्तो जातः ।	वह इस समय आने जाने को भी असमर्थ हो गया है ।
बुद्धिविपर्यासत्वाद्विपरीतं भाषते ।	बुद्धि के विपरीत होने से उलटा बोलता है।
अद्याऽस्य मरणसमय आगत ऊर्ध्वश्वासत्वात् ।	आज इसके मरने का समय आया ऊपर को श्वास के चलने से ।
सोऽद्य मृतः ।	वह आज मरगया ।
नीयतां श्मशानं वेदमन्त्रैर्घृतादिभिर्दह्यताम् ।	ले चलो श्मशान को वेदमन्त्रों करके घी आदि सुगन्ध से जला दो ।
शरीरं भस्मीभूतं आगमनस्तृतीयेऽह्न्यस्थिसञ्चयनं कृत्वा पुनस्तन्निमित्तं शोकादिकं किञ्चिदपि नैव कार्यम् ।	शरीर भस्म होगया इस से तीसरे दिन हाड़ों को वेदी से इकट्ठे कर उठा के फिर उसके निमित्त शोकादि कुछ भी न करना चाहिये ।
त्वं मातापित्रोः सेवां न करोष्यतः कृतघ्नोऽस्यतो मातापितृसेवा केनापि नैव त्याज्या ।	तू माता पिता की सेवा नहीं करता इससे कृतघ्नी है इसलिये माता पिता की सेवा का त्याग किसी को कभी न करना चाहिये ।

अथ सायंकालकृत्यप्रकरणम् ॥

इदानीन्तु सन्ध्यासमय आगतः सायंसन्ध्यामुपास्य भोजनं कृत्वा भ्रमणं कुरुत ।	अब तो सन्ध्या समय आया सन्ध्योपासन और भोजन करके घूमना फिरना करो ।
अद्य त्वया कियत्कार्यं कृतम् ?	आज तूने कितना काम किया ?
एतावत्कृतमेतावदवशिष्टमस्ति ।	इतना किया और इतना शेष है ।
अद्य कियाँल्लाभो व्ययश्च जातः ?	आज कितना लाभ और खर्च हुआ ?
पञ्चशतानि मुद्रा लाभः सार्द्धद्विशते व्ययश्च ।	पांच सौ रुपये लाभ और अढ़ाई सौ खर्च हुए ।

इदानीं सामगानं क्रियताम् ।	इस समय सामवेद का गान कीजिये
वीणादीनि वादित्राण्यानीयंताम् ।	वीणादिक बाजे लाइये ।
आनीतानि ।	लाये ।
वाद्यताम् ।	बजाईये ।
गीयताम् ।	गाईये ।
कस्य रागस्य समयो वर्त्तते ।	किस राग की वेला है ।
षड्जस्य ।	षड्ज की ।
इदानीं तु दशघटिकामात्रा रात्रिर्गता शयि-ष्यामहे ।	इस समय तो दश घड़ी रात आई सोइं
गम्यतां स्वस्वस्थानम् ।	जाइये अपने २ घर को ।
स्वस्वशय्यायां शयनं कर्त्तव्यम् ।	अपने २ पलंग पर सोना चाहिये ।
सत्यमेवेश्वरकृपया सुखेन रात्रिर्गच्छेत्प्रभा-तं भवेत ।	सत्य है ऐसे ही ईश्वर की कृपा से सुख पूर्वक रात बीते और सवेरा होवे ।

शरीराऽवयवप्रकरणम् ॥

अस्य शिरः स्थूलं वर्त्तते ।	इस का शिर बड़ा है ।
देवदत्तस्य मूर्द्धजाः कृष्णा वर्त्तन्ते ।	देवदत्त के शिर में बाल काले हैं ।
मम तु खलु श्वेता जाताः ।	मेरे तो सुपेद हो गये ।
तवापि केशा अर्द्धश्वेताः सन्ति ।	तेरे भी बाल आधे सुपेद हैं ।
अस्य ललाटं सुन्दरमस्ति ।	इस का माथा सुन्दर है ।
अयं शिरसा खल्वाटः ।	इस के शिर में बाल नहीं है ।
[illegible]स्योत्तमे भ्रुवौ स्तः ।	उस की अच्छी भौंहें हैं ।
[illegible] शृणोषि न वा ?	कान से सुनता है वा नहीं ?
[illegible]मि ।	सुनता हूं ।
[illegible] कर्णयोः [illegible]	इस की [illegible] गहने
।	[illegible] ।
कर्णाभ्यां बधिरो[illegible] ।	

बधिरस्तु न परन्तु श्रवणे ध्यानं न ददाति ।	बहिरा तो नहीं परन्तु सुनने में ध्यान नहीं देता ।
अयं विशालाक्षः ।	यह अच्छे नेत्रवाला है ।
त्वं चक्षुषा पश्यसि न वा ?	तू आंख से देखता है वा नहीं ?
पश्यामि परन्त्विदानीं मन्ददृष्टिर्जातोऽस्मि ।	देखता हूं परन्तु इस समय मन्ददृष्टि अर्थात् थोड़ी दृष्टिवाला हो गया हूं ।
इदानीन्ते रक्ते अक्षिणी कथं वर्त्तेते ?	इस समय तेरी आंखें लाल क्यों हैं ?
यतोऽहं शयनादुत्थितः ।	जिससे मैं सोने से उठा हूं ।
स काणो धूर्त्तोऽस्ति ।	वह काना धूर्त्त है ।
द्रष्टव्यमयमन्धः सचक्षुष्कवत् कथं गच्छति ।	देखना चाहिये यह अन्धा आंखवाले के समान कैसे जाता है ।
तवाऽक्षिणी कदा नष्टे ?	तेरी आंखें कब नष्ट हुईं ?
यदाऽहं पञ्चवर्षोऽभूवम् ।	जब मैं पांच वर्ष का हुआ था ।
इदानीम्मन्नेत्रे रोगोऽस्ति स कथं निवर्त्स्यति ?	इस समय मेरे नेत्र में रोग है वह कैसे निवृत्त होगा ?
अञ्जनाद्यौषधसेवनेन निवर्त्स्यति ।	अञ्जन आदि औषध के सेवन से निवृत्त होगा ।
तस्य नासिकोत्तमाऽस्ति ।	उसकी नाक अति सुन्दर है ।
भवानपि शुकनासिकः ।	आप भी सुग्गे के सी नाकवाले हैं ।
घ्राणेन गन्धं जिघ्रसि न वा ?	नाक से गन्ध सूंघते हो वा नहीं ?
श्लेष्मकफत्वान्मया नासिकया गन्धो न प्रतीयते ।	सरदी कफ होने से मुझ को नासिका से गन्ध की प्रतीति नहीं होती ।
अयं पुरुषः सुकपोलोऽस्ति ।	यह पुरुष अच्छे गालवाला है ।
अतिस्थूलत्वादस्य नाभिर्गम्भीरा ।	बहुत मोटा होने से इसकी नाभि गहरी है ।
त्वमद्य प्रसन्नमुखो दृश्यसे किमत्र कारणम् ?	तू आज प्रसन्नमुख दिखाई देता है इसमें क्या कारण है ?
अयं सदाऽऽह्लादितवदनो विद्यते ।	यह सब दिन प्रसन्नमुख बना रहता है ।
अस्यौष्ठौ श्रेष्ठौ वर्त्तेते ।	इस के ओष्ठ बहुत अच्छे हैं ।
अयं लम्बोष्ठत्वाद्भयङ्करोऽस्ति ।	यह लम्बे ओष्ठवाला होने से भयङ्कर है ।

इदानीं सामगानं क्रियताम् ।	इस समय सामवेद का गान कीजिये
वीणादीनि वादित्राण्यानीयन्ताम् ।	वीणादिक बाजे लाइये ।
आनीतानि ।	लाये ।
वाद्यताम् ।	बजाइये ।
गीयताम् ।	गाइये ।
कस्य रागस्य समयो वर्त्तते ।	किस राग की वेला है ।
षड्जस्य ।	षड्ज की ।
इदानीं तु दशघटिकापमिता रात्र्यागता शयि-तव्यम् ।	इस समय तो दश घड़ी रात आई सो
गम्यतां स्वस्वस्थानम् ।	जाइये अपने २ घर को ।
स्वस्वशय्यायां शयनं कर्त्तव्यम् ।	अपने २ पलंग पर सोना चाहिये ।
सत्यमेवेश्वरकृपया सुखेन रात्रिर्गच्छेत्प्रभा-तं भवेत् ।	सत्य है ऐसे ही ईश्वर की कृपा से पूर्वक रात बीते और सवेरा होवे ।

शरीराऽवयवप्रकरणम् ॥

अस्य शिरः स्थूलं वर्त्तते ।	इस का शिर बड़ा है ।
देवदत्तस्य मूर्द्धकेशाः कृष्णा वर्त्तन्ते ।	देवदत्त के शिर में बाल काले हैं ।
मम तु खलु श्वेता जाताः ।	मेरे तो सुपेद हो गये ।
तवापि केशा अर्द्धश्वेताः सन्ति ।	तेरे भी बाल आधे सुपेद हैं ।
अस्य ललाटं सुन्दरमस्ति ।	इस का माथा सुन्दर है ।
अयं शिरसा खल्वाटः ।	इस के शिर में बाल नहीं हैं ।
तस्योत्तमे भ्रुवौ स्तः ।	उस की अच्छी भौंहें हैं ।
श्रोत्रेण शृणोषि न वा ?	कान से सुनता है वा नहीं ?
शृणोमि ।	सुनता हूं ।
अनया स्त्रिया कर्णयोः प्रशस्तान्याभूषणानि धृतानि ।	इस स्त्री ने कानों में अच्छे सुन्दर ग पहिने हैं।
किमयं कर्णाभ्यां बधिरोऽस्ति ?	क्या यह कानों से बहिरा है ?

बधिरस्तु न परन्तु श्रवणे ध्यानं न ददाति।	बहिरा तो नहीं परन्तु सुनने में ध्यान नहीं देता।
अयं विशालाक्षः।	यह अच्छे नेत्रवाला है।
त्वं चक्षुषा पश्यसि न वा?	तू आंख से देखता है वा नहीं?
पश्यामि परन्त्विदानीं मन्ददृष्टिर्जातोऽस्मि।	देखता हूं परन्तु इस समय मन्ददृष्टि अर्थात् थोड़ी दृष्टिवाला होगया हूं।
इदानीन्ते रक्ते अक्षिणी कथं वर्त्तेते?	इस समय तेरी आंखें लाल क्यों हैं?
यतोऽहं शयनादुत्थितः।	जिससे मैं सोने से उठा हूं।
स काणो धूर्तोऽस्ति।	वह काना धूर्त है।
द्रष्टव्यमयमन्धः सचक्षुष्कवत् कथं गच्छति।	देखना चाहिये यह अन्धा आंखवाले के समान कैसे जाता है।
तवाऽक्षिणी कदा नष्टे?	तेरी आंखें कब नष्ट हुईं?
यदाऽहं पञ्चवर्षोऽभूवम्।	जब मैं पांच वर्ष का हुआ था।
इदानीम्मन्नेत्रे रोगोऽस्ति स कथं निवर्त्स्यति?	इस समय मेरे नेत्र में रोग है वह कैसे निवृत्त होगा?
अञ्जनाद्यौषधसेवनेन निवर्त्स्यते।	अञ्जन आदि औषध के सेवन से निवृत्त होगा।
तस्य नासिकोत्तमास्ति।	उसकी नाक अति सुन्दर है।
भवानपि शुकनासिकः।	आप भी सुग्गे के सी नाकवाले हैं।
घ्राणेन गन्धं जिघ्रति न वा?	नाक से गन्ध सूंघते हो वा नहीं?
श्लेष्मकफत्वान्मया नासिकया गन्धो न प्रतीयते।	सरदी कफ होने से मुझ को नासिका से गन्ध की प्रतीति नहीं होती।
अयं पुरुषः सुकपोलोऽस्ति।	यह पुरुष अच्छे गालवाला है।
अतिस्थूलत्वादस्य नाभिर्गम्भीरा।	बहुत मोटा होने से इसकी नाभि गहरी है।
त्वमद्य प्रसन्नमुखो दृश्यसे किमत्र कारणम्?	तू आज प्रसन्नमुख दिखाई देता है इसमें क्या कारण है?
अयं सदाऽऽह्लादितवदनो विद्यते।	यह सब दिन प्रसन्नमुख बना रहता है।
अस्यौष्ठौ श्रेष्ठौ वर्त्तेते।	इस के ओष्ठ बहुत अच्छे हैं।
अयं लम्बोष्ठत्वाद्भयङ्करोऽस्ति।	यह लम्बे ओष्ठवाला होने से भयङ्कर है।

सर्वैर्जिह्वया स्वादो गृह्यते ।	सब लोग जीभ से स्वाद लिया करते हैं ।
वाचा सत्यं प्रियं मधुरं सदैव वाच्यम् ।	वाणी से सत्य और प्रिय सब दिन बोलना चाहिये ।
नैव केनचित्कस्यचिदनृतादिकं वक्तव्यम् ।	कभी किसी को झूंठ बोलना नहीं चाहिये।
अयं सुदन् वर्त्तते ।	यह अच्छे दांतों वाला है ।
तव दन्ता दृढाःसन्ति वा चलिताः ?	तेरे दांत दृढ़ हैं वा चल गये हैं ?
मम दृढा अस्य तु त्रुटिताः सन्ति ।	मेरे दृढ़ हैं अर्थात् निश्चल हैं और इस के तो टूट गये हैं ।
मन्मुख एकोऽपि दन्तो नास्त्यतः कष्टेन भोजनादिकं करोमि ।	मेरे मुख में एक भी दांत नहीं है इससे कष्ट से भोजन करता हूं ।
अस्य श्मश्रूणि लम्बीभूतानि सन्ति ।	इस की मूंछें लम्बी हैं ।
तव चिबुकस्योपरि केशा न्यूनाः सन्ति ।	तेरे ठोड़ी के ऊपर बाल थोड़े हैं।
त्वया कण्ठ इदं किमर्थं बद्धम् ?	तूने गले में यह किसलिये बांधा है ?
अस्योरू विस्तीर्णौ स्तः ।	इस की जंघा तैयार हैं ।
त्वया हृदये किं लिप्तम् ?	तूने छाती में क्या लगाया है ?
इदानीं हेमन्तोऽस्त्यतः कुङ्कुमकस्तूर्यौ लिप्ते ।	इस समय हेमन्त ऋतु है इससे केसर और कस्तूरी लेपन किये हैं ।
तथा हृच्छूलनिवारणायौषधम् ।	वैसे ही हृदयशूल निवारण के लिये औषध।
माणवकः स्तनाद्दुग्धं पिबति ।	लड़का स्तन से दूध पीता है ।
पश्य ! देवदत्तोऽयं लम्बोदरो वर्त्तते ।	देख ! देवदत्त यह बड़े पेटवाला अर्थात् तुन्दीला है ।
अयन्तु खलु क्षामोदरः ।	यह तो छोटे पेटवाला है ।
तव पृष्ठे किं लग्नमस्ति ?	तेरी पीठ में क्या लगा है ?
किं स्कन्धाभ्यां भारं वहसि ?	क्या तू कन्धों से भार उठाता है ?
पश्याऽस्य क्षत्रियस्य बाहोर्बलं येन स्वभुजबलप्रतापेन राज्यं वर्द्धितम् ।	देख ! इस क्षत्रिय का बाहुबल जिसने अपने बाहुबल से राज्य बढ़ाया है ।

संस्कृत	भाषा
मनुष्येण हस्ताभ्यामुत्तमानि धर्मकार्याणि सेव्यानि नैव कदाचिदधर्म्याणि ।	मनुष्य को चाहिये कि हाथों से उत्तम धर्मयुक्त कर्म करे न कभी अधर्मयुक्त कर्मों को ।
अस्य करपृष्ठे करतले च घृतं लग्नमस्ति ।	इस के हाथ की पीठ और तले में घी लगा है ।
मुष्टिबन्धने सत्येकत्राऽङ्गुष्ठ एकत्र पञ्चाङ्गुलयो भवन्ति ।	मूठी बांधने में एक ओर अंगूठा और एक ओर पांच अंगुली होती हैं ।
शरीरस्य मध्यभागे नाभिः पुरतः पश्चिमतः कटिः कथ्यते ।	शरीर के आगे बीच भाग को नाभि और पीछे के भाग को पीठ कहते हैं ।
अयं मल्लः स्थूलोरुः ।	यह पहलवान् मोटी जंघा वाला है ।
माणवको जानुभ्यां गच्छति ।	लड़का घोंटू के बल से चलता है ।
अद्यातिगमनेन जङ्घे पीडितेस्तः ।	आज बहुत चलने से जांघें दूखती हैं ।
अहं पद्भ्यां श्वो ग्राममगमम् ।	मैं पैदल कल गांव को गया था ।
अस्य शरीरे दीर्घाणि लोमानि सन्ति ।	इस के शरीर में बड़े २ रोम हैं ।
तव शरीरे न्यूनानि सन्ति ।	और तेरे शरीर में थोड़े रोम हैं ।
अस्य शरीरचर्म श्लक्ष्णं वर्त्तते ।	इस के शरीर का चमड़ा चिकना है ।
पश्यास्य नखा आरक्ताः सन्ति ।	देख ! इस के नख कुछ २ लाल हैं ।
अयं दक्षिणेन हस्तेन भोजनं वामेन जलं पिबति ।	यह दहिने हाथ से भोजन और बांये से जल पीता है ।
इदानीं त्वया श्रमः कृतोऽस्त्यतो धमनी दीप्तं चलति ।	इस समय तूने श्रम किया है इस से नाड़ी दीप्त चलती है ।
अधुना तु ममान्तस्त्वग् दह्यतेऽस्थिषु पीडापि वर्त्तते ।	इस समय मेरे भीतर की त्वचा जलती और हाड़ों में पीड़ा भी है ।

अथराजसभाप्रकरणम् ॥

संस्कृत	भाषा
तिष्ठ भो देवदत्त ! त्वया सह गच्छामि राजसभाम् ।	ठहर हे देवदत्त ! तेरे साथ मैं भी राजसभा को चलता हूं ।

सभाशब्दस्य कः पदार्थः ?	सभा शब्द का क्या अर्थ है ।
या सत्यासत्यनिर्णयाय प्रकाशयुक्ता वर्त्तते ।	जो सच झूठ का निर्णय करने के प्रकाश से सहित हो ।
तत्र कति सभासदः सन्ति ।	वहां कितने सभासद् हैं ।
सहस्रम् ।	हजार ।
या मम ग्रामे सभास्ति तत्र खलु पञ्चशतानि सभासदः सन्ति ।	जो मेरे ग्राम में सभा है उस में तो सौ सभासद् हैं ।
इदानीं सभायां कस्य विषयस्योपरि विचारः कर्त्तव्यः ।	इस समय सभा में किस विषय पर करना चाहिये ।
युद्धस्य ।	युद्ध अर्थात् लड़ाई का ।
तेन सह युद्धं कर्त्तव्यं न वा ।	उस के साथ युद्ध करना चाहिये वा न
यदि कर्त्तव्यं तर्हि कथम् ।	यदि करना चाहिये तो कैसे ।
यदि स धर्मात्मा तदा तु न कर्त्तव्यम् ।	यदि वह धर्मात्मा हो तब तो युद्ध का योग्य नहीं ।
पापिष्ठश्चेत्तर्हि तेन सह योद्धव्यमेव ।	और जो पापी हो तो उसके साथ यु करना ही चाहिये ।
सोऽन्यायेन प्रजां भृशं पीडयत्यतो महापापिष्ठः ।	वह अन्याय से प्रजा को निरन्तर पी देता है इस कारण से बड़ा पापी है ।
एवं चेत्तर्हि शस्त्रास्त्रप्रक्षेपयुद्धकुशला बलिष्ठा कोशधान्यादिसामग्रीसहिता सेना युद्धाय प्रेषणीया ।	यदि ऐसा है तो शस्त्र अस्त्र चलाने और युद्ध में कुशल बड़ी लड़ने वाली । जाना और अन्नादि सामग्री सहित से युद्ध के लिये भेजनी चाहिये ।
सत्यमेवात्र वयं सर्वे सम्मतिं दद्मः ।	सच ही है इस में हम सब लोग सम्म देते हैं ।
इदानीं कस्यां दिशि कैः सह युद्धं प्रवर्त्तते ।	इस समय किस दिशा में कौन के सा युद्ध होता है ।
पश्चिमायां दिशि यवनैः सह हरिवर्षस्थानाम् ।	पश्चिम दिशा में मुसलमानों का और ह रिवर्ष्थ अर्थात् युरोपियन् लोगों का

पराजिता अपि यवना अद्याप्युपद्रवं न त्यजन्ति ।	हारे हुए मुसलमान लोग अब भी उपद्रव अर्थात् धूम धाम नहीं छोड़ते ।
अयं खलु पशुपक्षिणामपि स्वभावोऽस्ति यदा कश्चित्तद्गृहादिकं हर्तुमिच्छेत् तदा यथाशक्ति युध्यन्त एव ।	यह तो पशु पक्षियों का भी स्वभाव है कि जब कोई उन के घर आदि को छीन लेने की इच्छा करता है तब यथाशक्ति युद्ध करते अर्थात् लड़ते ही हैं ।

अथ ग्राम्यपशुप्रकरणम् ॥

भो गोपाल ! गा वने चारय ।	हे अहिर ! गौओं को वन में चरा ।
तत्र या धेनवस्ताभ्योऽर्द्धं दुग्धं त्वया दुग्ध्वा स्वामिभ्यो देयमर्द्धं च वत्सेभ्यः पाययितव्यम् ।	वहां जो नई ब्यानी गौयें उन से आधा दूध तूने दुहकर मालिक को देना और आधा बछड़ों को पिलाना चाहिये ।
एतौ वृषभौ रथे योक्तुं योग्यौ स्तः । इमौ हले खलु ।	ये दोनों बैल गाड़ी में वा रथ में जोतने के योग्य हैं और ये दोनों हल ही में ।
पश्यैताः स्थूला महिष्यो वने चरन्ति ।	देखिये, ये मोटी भैंसें वन में चरती हैं ।
आगच्छ भो द्रष्टव्यम्महिषाणां युद्धं परस्परं कीदृशं भवति ।	आओ जी देखने योग्य भैंसों का युद्ध किस प्रकार आपस में हो रहा है ।
अस्य राज्ञो बहव उत्तमा अश्वाः सन्ति ।	इस राजा के बहुत उत्तम घोड़े हैं ।
किमियं राज्ञः सतुरङ्गा सेना गच्छति !	क्या यह राजा की घोड़ों सहित सेना जा रही है !
श्रोतव्यं हयाः कीदृशं ह्रेषन्ते !	सुनिये, घोड़े किस प्रकार हिनहिनाते हैं !
यथा हस्तिनो स्थूलाः सन्ति तथा हस्तिन्योऽपि ।	जैसे हाथी मोटे होते हैं वैसी हथिनी भी ।
नागास्समं गच्छन्ति !	हाथी बराबर चाल से चलते हैं !
शृणु, करिणः कीदृशं बृंहन्ति ।	सुन, हाथी कैसे चिंघारते हैं ।

अथ ग्रामस्थपक्षिप्रकरणम् ॥

एताभ्यां चटकाभ्यां प्रासादे नीडं रचितम्।	इन चिड़ियों ने अटारी पर घोंसला बनाया है।
अत्राण्डानि धृतानि।	यहां अण्डे धरे हैं।
इदानीं तु चाटकैरा अपि जाताः।	अब तो इन के बच्चे भी हो गये हैं।
पश्य, विष्णुमित्र! कुक्कुटयोर्युद्धम्।	देख विष्णुमित्र! मुरगों की लड़ाई।
कुक्कुटी स्वान्यण्डानि सेवते।	मुरगी अपने अंडों को सेवती है।
पश्य, शुकानां समूहं यो विरुवन्नुड्डीयते।	देख, सुग्गों के झुंड को जो चचेता हुआ उड़ा जाता है।
रात्रौ काका न वाश्यन्ते।	रात में कौवे नहीं बोलते हैं।
अरे! भृत्योड्डायय ध्वांक्षमनेन पानीयजलपात्रे चञ्चुं निक्षिप्य जलं विनाशितम्।	अरे नौकर! कौवे को उड़ादे उसने पीने के जल के बरतन में चोंच डाल कर जल गंदा कर दिया।
वायसेन बालकहस्ताद्रोटिका हृता।	कौए ने लड़के के हाथ से रोटी लेली।
पश्य, कीदृशं काकोलूकिकं युद्धं प्रवर्त्तते।	देख, किस प्रकार की कौवे और उल्लुओं की लड़ाई हो रही है।
अनेन शुकहंसतित्तिरिकपोताः पालिताः।	इस ने सुग्गा हंस तीतर और कबूतर पाले हैं।

अथ वन्यपशुप्रकरणम् ॥

वने रात्रौ सिंहा गर्जन्ति।	वन में रात के समय सिंह गर्जते हैं।
शार्दूलं दृष्ट्वा सिंहा निलीयन्ते।	शार्दूल को देखकर सिंह छिप जाते हैं।
ह्यः सिंहो गामवधीत्	कल सिंह ने गौ को मार डाला।
परश्वो विक्रमवर्मणा सिंहो हतः।	परसों विक्रम वर्मा क्षत्रिय ने सिंह मारा।

द्रष्टव्यं हस्तिसिंहरणम् ।	देख हाथी और सिंह की लड़ाई ।
जङ्गले हस्तियूथाः परिभ्रमन्ति ।	जंगल में हाथियों के झुंड घूमते हैं ।
इदानीमेव वृकेण मृगो गृहीतः ।	अभी भेड़िये ने हरिन पकड़ लिया ।
अयं कुक्कुरो बलवानेनेन सिंहेन सहाप्याजिः कृता ।	यह कुत्ता बड़ा बलवान् है इस ने . के साथ भी लड़ाई की ।
पश्य सिंहवराहसंग्रामम् ।	देख सिंह और शूकर का युद्ध ।
शूकरा इक्षुक्षेत्राणि भक्षयित्वा विनाशयन्ति ।	शूकर ऊख के खेतों को खाकर नष्ट देते हैं ।
पश्य, वेगेन धावतो मृगान् ।	देख, वेग से दौड़ते हुए हिरनों को ।
अयं रुरुर्वृषभवत्स्थूलोऽस्ति ।	यह काला रोझ बैल के समान मोटा है
यो निलयादुत्प्लुत्य धावति स शशस्त्वया दृष्टो न वा ?	जो मांटी से लपटझपट के दौड़ता उस खरहा को तू ने देखा है वा नहीं
बहून्दृष्टवान् ।	बहुतों को देखा है ।
कदाचिद्भल्लकोऽपि दृष्टो न वा ?	कभी रीछ भी देखे हैं वा नहीं ?
एकदा ऋक्षेन साकं मम युद्धं जातम् ।	एक समय रीछ के साथ मेरी लड़ाई हुई थी ।
रात्रौ शृगालाः क्रोशन्ति ।	रात्रि में सियाल रोते हैं ।
कदाचित्खड्गोऽपि दृष्टो न वा ?	कभी गैंडा भी देखा था नहीं ?
य आरण्या महिषा बलवन्तो भवन्ति तान्कदाचिद् दृष्टवान्न वा ?	जो अरणा भैंसे बलवान् होते हैं उन कभी देखा था नहीं ?

अथ वनस्थपक्षिप्रकरणम् ॥

कदाचित्सारसावप्युड्डीयमानौ क्रीडन्तौ महाशब्दं कुरुतः ।	कभी सारस पक्षी भी उड़ते और क्री करते हुए बड़े शब्द करते हैं ।
श्येनेनातिवेगेन वर्तिका हता ।	बाज ने बड़े वेग से बटेर मारी ।
शृणु तित्तिराः कीदृशं मधुरं वदन्ति !	सुन तितिर किस प्रकार मधुर बोलते हैं

मूषका बिले शेरते ।	मूसे बिल में सोते हैं ।
मक्षिकां भक्षयित्वा वमनं प्रजायते ।	मक्खी खाकर वमन हो जाता है ।
अत्र वासः कर्त्तव्यो निर्मक्षिकं वर्त्तते ।	यहां वास करना चाहिये मक्खी एक नहीं है ।
मधुमक्षिकादशनेन शोथः प्रजायते ।	मधुमक्खियों के काटने से सूजन होती है ।
भ्रमरा गुञ्जन्तः पुष्पेभ्यो गन्धं गृह्णन्ति ।	भौंरे गूंजते हुए फूलों से सुगन्धि ग्रहण करते हैं ।

अथ जलजन्तुप्रकरणम् ॥

तिमिङ्गिला मत्स्याः समुद्रे भवन्ति ।	तिमिङ्गिल मच्छी समुद्र में होती हैं ।
रोहित् सिंहतुण्डराजीवाश्च पुष्करिणीनदीतडागसमुद्रेषु निवसन्ति ।	रोहू सिंहतुण्ड और राजीव इन नामों वाली मछलियां पुष्करिया नदी तलाव और समुद्र में वास करती हैं ।
मकरः पशूनपि गृहीत्वा निगलति ।	मगर पशुओं को भी पकड़ कर निगल जाता है ।
नक्रग्राहा अपि महान्तो भवन्ति ।	नाके घरियार भी बड़े २ होते हैं ।
कूर्म्माः स्वाङ्गानि संकोच्य प्रसारयन्ति ।	कछुए अपने अङ्गों को समेट कर फैलाते हैं ।
वर्षासु मण्डूकाः शब्दयन्ति ।	वर्षा में मेंडके बोलते हैं ।
जलमनुष्या अप्सु निमज्ज्य तटे आसते ।	जल के मनुष्य पानी में डूब कर तीर बैठते हैं ।

अथ वृक्षवनस्पतिप्रकरणम् ॥

पिप्पलाः फलिता न वा ?	पीपल फले हैं या नहीं ?

इमे वटाः सुच्छायास्सन्ति ।
पश्यैन उदुम्बराः सफला वर्त्तन्ते ।
इमे विल्वाः स्थूलफलास्सन्ति ।
ममोद्यान आम्राः पुष्पिताः फलिताः सन्ति।
इदानी पक्वफला अपि वर्त्तन्ते ।
अस्याऽऽम्रस्य मधुराणि रसवन्ति च फला-
नि भवन्ति ।
तस्य खम्लानि भवन्ति ।
पनसस्य महान्ति फलानि भवन्ति ।
शिंशपायाः काष्ठानि दृढानि सन्ति शालस्य
दीर्घाणि च ।
स्य बर्बुरस्य कण्टकास्तीक्ष्णा भवन्ति ।
रीणां तु मधुराम्लानि फलानि कण्टकाश्च
टिला भवन्ति ।
निम्बो ज्वरं निहन्ति ।
कफलरसं सूपे निक्षिप्य भोक्तव्यम्।
टिकायां दाडिमफलान्यत्युत्तमानि जा-
।
लान्यानय ।
शाः पुष्यन्ति ।
वृक्षपत्रफलानि भुञ्जते ।

ये बड़ अच्छी छाया वाले हैं ।
देख, ये गूलर फलयुक्त होरहे हैं ।
ये बेल बड़े २ फल वाले हैं ।
मेरे बगीचे में आम फूले फले हैं ।
इस काल में पक्के फलवाले भी हैं ।
इस आम के मीठे और रसीले फल होते
हैं ।
उस के तो खट्टे होते हैं ।
कटहल के बड़े २ फल होते हैं ।
सीसों की लकड़ी कठिन होती और साख्
की लकड़ी लंबी होती है ।
इस बबूल के कांटे तीखी अणी वाले होते
हैं ।
बेरियों के तो मीठे खट्टे फल और इन के
कांटे टेढ़े होते हैं ।
कड़ुआ नीम ज्वर का नाश कर देता है ।
नीबू का रस दाल में डालकर खाने योग्य
है ।
मेरे बगीचे में अनार बहुत अच्छे होते हैं।

नारंगी के फलों को ला ।
बसंतऋतु में ढांक फूलते हैं ।
ऊंट शमी अर्थात् खींजड़ (छोंकर) वृक्ष
के पत्ते और फलों को खाते हैं ।

अथौषधप्रकरणम् ॥

पक्वानि न वा ?
वैश्यप्रकरणे लिखितास्तत्र

केला के फल पके वा नहीं ?
चावल आदि तो बनियों के प्रकरण में
लिखे हैं वहां देख लेना ।

विषनिवारणायाऽपामार्गमानय ।	विष दूर करने के लिये चिचिड़ा ला
निर्गुण्ड्याः पत्राण्यानयानि ।	निर्गुण्डी के पत्ते लाने चाहियें ।
लज्जावत्याः किं जायते ?	लज्जावन्ती का क्या होता है ?
गुडूची ज्वरं निवारयति ।	गिलोय ज्वर को शांत करती है ।
शंखावली दुग्धे पाचयित्वा पिबेत् ।	शंखावली को दूध में पकाके पिये ।
यथर्त्तुयोगं हरीतकी सेविता सर्वान्रोगान्निवारयति ।	जिस प्रकार से ऋतु २ में हरड़े का करना योग्य है वैसे सेवी हुई सब रोगों को छुड़ा देती है ।
शुण्ठीमरीचपिप्पलीभिः कफवातरोगौ निहन्तव्यौ ।	सोंठ मिर्च और पीपल से कफ और रोगों का नाश करना चाहिये ।
योऽश्वगन्धं दुग्धे पाचयित्वा पिबति स पुष्टो जायते ।	जो असगन्ध को दूध में पकाके पीता वह पुष्ट होता है ।
इमानि कन्दानि भोक्तुमर्हाणि वर्त्तन्ते ।	ये कन्द खाने के योग्य हैं ।
एतेषान्तु शाकमपि श्रेष्ठं जायते ।	इन कन्दों का तो शाक भी अच्छा होता
अस्यां वाटिकायां गुल्मलताः प्रशंसनीयाः सन्ति ।	इस बगीचे में गुच्छा और लताप्रतान सा के योग्य अर्थात् अच्छे हैं ।

अथात्मीयप्रकरणम् ॥

तव ज्येष्ठो बन्धुर्भगिनी च कास्ति ?	तेरे बड़ा भाई और बहिन कौन है ?
देवदत्तस्सुशीला च ।	देवदत्त और सुशीला ।
भो बन्धोऽहं पाठाय व्रजामि ।	हे भाई ! मैं पढ़ने को जाता हूं ।
गच्छ प्रिय ! पूर्णां विद्यां कृत्वाऽऽगन्तव्यम् ।	जा प्यारे ! पूरी विद्या करके आना ।
भवतः कन्या अद्यश्वः किं पठन्ति ?	आपकी बेटियां आजकल क्या पढ़ती हैं
वर्णोच्चारणशिक्षादिकं दर्शनशास्त्राणि चाधीत्येदानीं धर्मपाकशिल्पगणितविद्या अधीयते ।	वर्णोच्चारण शिक्षादिक तथा न्याय आदि शास्त्र पढ़कर अब धर्म, पाक, शिल्प और गणितविद्या पढ़ती हैं ।

भवज्ज्येष्ठया भगिन्या किं किमधीतमिदानीञ्च तया किं क्रियते ?

वर्णज्ञानमारभ्य वेदपर्यन्ताः सर्वाविद्या विदित्वेदानीं बालिकाः पाठयति ।

तया विवाहः कृतो न वा ?

इदानीं तु न कृतः परन्तु वरं परीक्ष्य स्वयम्वरं कर्तुमिच्छति ।

[...]दा कश्चित् स्वतुल्यः पुरुषो मिलिष्यति तदा विवाहं करिष्यति ।

[...] मित्रैरधीतं न वा ?

सर्व एव विद्वांसो वर्त्तन्ते यथाऽहं तथैव तेऽपि समानस्वभावेषु मैत्र्यास्सम्भवात् ।

[...]व पितृव्यः किं करोति ?

[...]उपव्यवहारम् ।

[...] किं तव मातुलादयः [...]

आऽमयं मम मातुल इयं पितृष्वसेयं मातृष्वसेयं गुरुपत्न्ययं च गुरुः ।

इदानीमेते कस्मै प्रयोजनायैकत्रमिलिताः ?

[...]ा सत्कारायाऽऽहूताः सन्त आगताः ।

ये मातामहीश्वसुरश्यालादयः सन्ति ।

[...] मम मित्रस्य स्त्रीभगिनीदुहितृजामा[...]ः सन्ति ।

[...]मम पितृव्यस्य श्यालदौहित्रौ स्तः ।

आपकी बड़ी बहिन क्या २ पढ़[...] क्या करती है ?

अक्षराभ्यास से लेके वेद तक सब पू[...] पढ़के अब कन्याओं को पढ़ाया कर[...]

उसने विवाह किया वा नहीं ?

अभी तो नहीं किया परन्तु वर की परी[...] करके स्वयम्वर करने की इच्छा करती है[...] जब कोई अपने सदृश पति मिलेगा तब विवाह करेगी ।

तेरे मित्रों ने पढ़ा है वा नहीं ?

सब ही विद्वान् हैं जैसा मैं हूं वैसे वे भी हैं क्योंकि तुल्य स्वभाव वालों में मित्रता का सम्भव है ।

तेरा चाचा क्या करता है ?

राजा का कारबार ।

क्यों जी ये तेरे मामा आदि हैं ?

ठीक यह मेरा मामा यह बाप की बहिन फूआ यह माता की बहिन मौसी यह गुरु की स्त्री और यह गुरु है ।

इस समय ये सब किसलिये मिलकर इकट्ठे हुए हैं ?

मुझ से सत्कार के अर्थ बुलाये हुए आये हैं ।

ये मेरे नानी, ससुर और साले आदि हैं ।

ये मेरे मित्र की स्त्री बहिन लड़की और जमाई हैं ।

ये मेरे मामा और भानेज हैं ।

यो मद्यपोऽस्ति तस्य बुद्धिः कथं न ह्रसेत् ?	जो मद्य पीनेवाला है उस की बुद्धि क्यों न न्यून होवे ।
यो व्यभिचरेत्स रुग्णः कथं न जायेत् ?	जो व्यभिचार करे वह रोगी क्यों न होवे ?
यो जितेन्द्रियः स सर्वं कर्तुं कुतो न शक्नुयात् ?	जो जितेन्द्रिय है वह सब उत्तम काम क्यों न कर सके ?
योगाभ्यासः कृतो येन ज्ञानदीप्तिर्भवेन्नरः ।	जिस ने योग का अभ्यास किया है वह ज्ञानप्रकाश से युक्त होवे ।
वस्त्रपूतं जलं पेयं मनःपूतं समाचरेत् ।	वस्त्र से पवित्र किया जल पीना चाहिये और मन से शुद्ध जाना हुआ काम करना चाहिये ।
स भ्रान्तौ कदापि न पतेत् ।	वह भ्रमजाल में कभी नहीं गिरे ।
अयं वाचालोऽस्त्यतो बर्बरायते ।	यह बहुत बोलने वाला है इसी कारण बड़बड़ाता है ।
भूमितले किमस्ति ?	भूमि के नीचे क्या है ?
मनुष्यादयः ।	मनुष्य आदि ।
यः पद्भ्यां भ्रमति सोऽरोगो जायते ।	जो पग से चलता है वह रोग रहित होता है ।
व्यजनेन वायुं कुरु ।	पङ्खे से वायु (हवा) कर ।
किं घर्मादागतोऽसि यत् स्वेदो जातोऽस्ति ।	क्या घाम से आया है जो पसीना हो-रहा है ।
स्वस्थे शरीरे नित्यं स्नात्वा मितं भोक्तव्यम् ।	अच्छे शरीर होते रोज नहा के थोड़ासा खाना चाहिये ।
जलवायू शुद्धौ सेवनीयौ ।	पवित्र जल और वायु का सेवन करना चाहिये ।
सर्वर्तुसुखदे गृहे निवसनीयम् ।	जो सब ऋतुओं में सुख देनेवाला हो उसी घर में रहना चाहिये ।
नैव केनचिन्मलीनानि वस्त्राणि धार्याणि ।	किसी को भी मैले कपड़े पहिनने न चाहियें ।
तव का चिकीर्षास्ति ?	तेरी क्या करने की इच्छा है ?
गृहे गत्वा भोक्तुम् ।	घर जाके खाने की ।

त्वं सक्तुं भुङ्क्षे न वा ?	तू सत्तू खाता है वा नहीं ?
घृतदुग्धमिष्टैः सहाऽद्मि ।	घी दूध और मीठे के साथ खाता हूं।
त्वयाऽऽम्रफलानि चूषितानि न वा ।	तूने आम चूसे वा नहीं ?
खर्बूजफलान्यत्र मधुराणि जायन्ते ।	खरबूजे के फल यहां मीठे होते हैं।
इक्षुभ्यो गुडादिकं निष्पद्यते ।	ऊख आदि से गुड़ आदि बनाये ।
इदानीमाकण्ठं दुग्धं पीतं मया ।	इस समय गले तक मैंने दूध पिया।
तक्रं देहि ।	मठा दे ।
अत्र श्वेता शर्करा वर्तते ।	यहां सफेद चीनी है ।
अयं रुच्या दध्योदनं भुङ्क्ते ।	यह प्रीति से दही के साथ भात खाता
अद्य मोदका भुक्ता न वा ?	आज लड्डू खाये वा नहीं ?
त्वया कदाचित्कृशराऽपि भुक्ता न वा ?	तूने कभी खिचड़ी भी खाई वा नहीं ?
मयाऽपूपा भक्षिता ।	मैंने मालपूवे खाये हैं ।
सशर्करं दुग्धं पेयम् ।	शक्कर के सहित दूध पीना चाहिये।
येन धर्मः सेव्यते स एव सुखी जायते ।	जो धर्म का सेवन करता है वही सुखी रहता है ।

अथ लेख्यलेखकप्रकरणम् ॥

मनुष्यैः लेखाऽभ्यासः सम्यक् कार्यः ।	मनुष्य लिखने का अभ्यास अच्छे प्रकार करें ।
अयं सुन्दराण्यक्षराणि लिखति ।	यह सुन्दर अक्षर लिखता है ।
लेखिनीं सम्पादय ।	कलम बनाओ ।
मषीमानय ।	दवात ला ।
पुस्तकं लिख ।	पोथी लिख ।
त्वया पत्रं लिखित्वा प्रेषितं न वा ?	क्या चिट्ठी लिख कर भेजी वा नहीं ?
प्रेषितं पञ्च दिनानि व्यतीतानि तस्य प्रत्युत्तरमप्यागतम् ।	भेजे पांच दिन बीते उसका उत्तर भी आगया ।
सुवर्णमयानि अक्षराणि लिखितुं जानासि न वा ?	सुनहरी अक्षर लिखने जानता है वा नहीं ?

जानामि तु परन्तु सामग्रीसंचयने लेखने च विलम्बो जायते ।	जानता तो हूं परन्तु चीज इकट्ठी करने और लिखने में देर होती है ।
योऽङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां लेखिनीं गृहीत्वा मध्यमोपरि संस्थाप्य लिखेत्तर्हि महान्तो लेखो जायेत ।	जो अगूठा तर्जनीअगुली से कलम को पकड़कर बीचली अगुली पर रखकर लिखे तो बहुत अच्छा लेख हो ।
अयमतीव शीघ्रं लिखति ।	यह अत्यन्त जल्दी लिखता है ।
एतस्य लेखिनी मन्दा चलति ।	इस की लेखिनी धीरे चलती है ।
यदि त्वमेकाहं सततं लिखेस्तर्हि कियतः श्लोकांल्लिखितुं शक्नुयाः ?	यदि तू एक दिन निरन्तर लिखे तो कितने श्लोक लिख सके ?
पञ्च शतानि ।	पाच सौ ।
यदि शिक्षां गृहीत्वा शनैः शनैर्लिखितुमभ्यस्येत्तर्ह्यक्षराणां सुन्दरं स्वरूपं स्पष्टता च जायेत ।	यदि शिक्षा ग्रहण कर के धीरे २ लिखने का अभ्यास करे तो अक्षरों का दिव्य स्वरूप और स्पष्टता होवे ।
अस्मिँल्लाक्षारसे कज्जलं सम्मेलितं न वा ?	इस लाख के रस में कज्जल मिलाया है वा नहीं ?
मेलितं तु न्यूनं खलु वर्तते ।	मिलाया तो है परन्तु थोड़ा है ।
मनुष्यैर्यादृशः पठनाभ्यासः क्रियेत तादृश एव लेखनाभ्यासोऽपि कर्त्तव्यः ।	मनुष्य लोग जैसा पढ़ने का अभ्यास करें वैसा ही लिखने का भी करना चाहिये ।
मया वेदपुस्तकं लेखयितव्यमस्त्येकेन रूप्येण कियतः श्लोकान्दास्यसि ?	मुझ को वेद का पुस्तक लिखाना है एक रुपये से कितने श्लोक देगा ?
अत्युत्तमानि ग्रहीष्यसि चेत्तर्हि शतत्रयं मध्यमानि चेच्छतपञ्चकम् ।	जो बहुत अच्छे लोगे तो तीनसौ और मध्यम लोगे तो पांचसौ ।
साधारणानि चेत्सहस्रं श्लोकान्दास्यामि ।	यदि बहुत साधारण वा घटिया लोगे तो हजार श्लोक दूंगा ।
शतत्रयमेव ग्रहीष्यामि परन्त्वत्युत्तमं लिखित्वा दास्यसि चेत् ।	तीन ही सौ लूंगा परन्तु बहुत अच्छा लेख करेगा तो ।
एवमेव करिष्यामि ।	अच्छा ऐसा ही करूंगा ।

अथ मन्तव्यामन्तव्यप्रकरणम् ॥

त्वं जगत्स्रष्टारं सच्चिदानन्दस्वरूपं परमेश्वरं मन्यसे न वा ?	तू इस संसार के बनाने वाले सच्चित् और आनन्दस्वरूप परमेश्वर को मानता है वा नहीं?

अयं नास्तिकत्वात्स्वभावात्सृष्ट्युत्पत्तिं मत्वेश्वरं न स्वीकरोति ।

यह मनुष्य नास्तिक होने से स्वभाव सृष्टि की उत्पत्ति को मान कर ईश्वर नहीं मानता ।

यद्ययं कर्तृकार्यरचनाविशेषान् संसारे निश्चिनुयात्तर्ह्यवश्यं परमात्मानं मन्येत ।

जो यह नास्तिक कर्त्ता क्रिया . ने और बनावट को इस जगत् में निश्चय तो अवश्य ईश्वर को माने ।

योऽत्र सृष्टौ रचितरचनां पश्यति स जीवः कार्य्यवत्स्रष्टारं कुतो न मन्येत !

जो इस सृष्टि में बने हुए पदार्थों की को प्रत्यक्ष देखता है वह जैसे कारीगरी खके कारीगर को निश्चय करते हैं से ज के बनानेवाले परमात्मा को क्यों न माने

यत्रोत्तमा धार्मिका आस्तिका विद्वांसोऽध्यापका उपदेष्टारश्च स्युस्तत्र कोपि कदाचिन्नास्तिको भवितुं नैवार्हति ।

जहां श्रेष्ठ धर्मात्मा आस्तिक विद्वान् पढ़ानेवाले और उपदेशक हों, वहां मनुष्य नास्तिक कभी नहीं हो सकता ।

कैः कर्मभिर्मुक्तिर्भवति तदा क्व वसन्ति तत्र किं भुज्यते च ?

किन कर्मों से मुक्ति होती है उस कहां वास करते और वहां क्या भोगते हैं

धर्म्यैः कर्मोपासनाविज्ञानैर्मुक्तिर्जायते तदानीं ब्रह्मणि निवसन्ति परमानन्दं च सेवन्ते ।

धर्मयुक्त कर्म उपासना और विज्ञान से मोक्ष होता है उस समय ब्रह्म में मुक्त जीव रहते और परम आनन्द का सेवन करते हैं

मोक्षं प्राप्य तत्र सदा वसन्त्याहोस्वित्कदाचित्ततो निवृत्य पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति ?

जीव मुक्ति को प्राप्त होके वहां सदा रहते हैं अथवा कभी वहां से निवृत्त होकर पुनः जन्म और मरण को प्राप्त होते हैं ?

प्राप्तमोक्षा जीवास्तत्र सर्वदा न वसन्ति किन्तु महाकल्पपर्यन्तमर्थाद् ब्राह्ममायुर्यावत्तावत्तत्रोपिरवाऽऽनन्दं भुक्त्वा पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्त्येव ।

मुक्ति को प्राप्त हुए जीव वहां सर्वदा नहीं रहते किन्तु जितना ब्राह्म कल्प का परिमाण है उतने समय तक ब्रह्म में वास कर आनन्द भोग के फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः संस्कृतवाक्यप्रबोधनामको निबन्धः समाप्तः ॥

ओ३म्

१

शब्दानुशासनम्

यतोविश्वमिदं वेद्यं विश्ववेद्यं प्रणम्य तत् ॥
शब्दानुशासनंनाम शास्त्रं व्याख्यातुमारभे ॥ १ ॥

अथ शब्दानुशासनम् ॥ १ ॥

पदे-अथ अ० । शब्दानुशासनम् ॥ १ । १ ॥

पदार्थः-अथ=अथेत्ययमधिकारार्थः । शब्दानुशासनम्-अनुशिष्यन्ते शब्दा अनेन तदनुशासनम् । शिष्यन्ते शब्दा अनेन तच्छासनम् पश्चात् शासनमनुशासनमिति वा शब्दानामनुशासनम् शब्दानुशासनम् ॥ प्रतिज्ञासूत्रम् । सूत्रार्थः-शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिक्रियते । वर्णोच्चारणशिक्षानन्तरं शब्दशिक्षाविषयं शास्त्रमधिक्रियत इति वा ।

भा०-केषां शब्दानां लौकिकानां वैदिकानां च ॥ अथेत्ययमधिकारार्थः प्रयुज्यते शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम् । इति भाष्यम् ॥ १ ॥

अइउण् ॥ २ ॥

अ, इ, उ, इत्यक्षराण्युपदिश्यान्ते णकारमितं पठति । प्रत्याहारार्थम् । तस्य ग्रहणं भवति अ, इत्यनेन । निदर्शनम्—उरण्रपरइत्यादि ॥

भा०-अकारस्य विवृतोपदेश आकारग्रहणार्थः किं प्रयोजनम् । अकारः सवर्णग्रहणेनाकारमपि यथा गृह्णीयात् । अयमकार इह शास्त्रे विवृत उपदिश्यते ।

१-शब्दानुशासन शास्त्र का अधिकार किया जाता है अथवा वर्णोच्चारण शिक्षा के अनन्तर शब्दशिक्षा विषयक शास्त्रका अधिकार किया जाता है अर्थात् शब्द कैसे बनते उनका किन से किस प्रकार का सम्बन्ध है इत्यादि शिक्षा विषयक शास्त्र का प्रारम्भ किया जाता है। किन शब्दों का? लौकिक वैदिक शब्दोंका ॥ १ ॥

२-अ, इ, उ, इन अक्षरों का उपदेश कर अन्त में णकार इत् संज्ञक पढ़ा है, प्रत्याहार के लिये, उसका ग्रहण अकारसे होता है तद्विषयक सूत्र उरण्रपर है ॥

भाष्यकार महर्षि पतञ्जलि जी कहते हैं कि अइउण् सूत्र में अकार का विवृतोपदेश है क्या प्रयोजन कि अकार सवर्ण ग्रहण से आकार को भी ग्रहण करे। यह अकार इस शास्त्र में विवृत उपदेश किया जाता है पर प्रयोग में संवृत्त है

पदेशो हशप्रत्याहारार्थः पुरुषो हसति । ब्राह्मणो हसति । ...पदेशः शल्प्रत्या-
हारार्थः । अधुक्षत् । अलिक्षत् । रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति । इमे ...
कंचिदुपदिश्यन्ते श्रूयन्ते च तेषां कार्यार्थं उपदेशः कर्त्तव्यः । के पुनरयोगवाहाः
विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीयानुस्वारयमाः । कथं पुनरयोगवाहाः । यद-
वहन्ति । अनुपदिष्टाश्च श्रूयन्ते । अयोगवाहानामट्सु णत्वम् । उरःकेण । उर
उरःपेण । उरःपेण । अड्व्यवाय इति णत्वं सिद्धं भवति । अथ किमर्थमन्त
नामणसूपदेशः क्रियते । इह संयन्ता । सँव्वत्सरः । यँल्लोकम् । तं...
परसवर्णस्यासिद्धत्वादनुस्वारस्यैव द्विर्वचनम् । तत्र परस्य परसवर्णे कृते
यय्ग्रहणेन ग्रहणात् पूर्वस्यापि परसवर्णो यथा स्यादिति भाष्यम् ॥

लण् ॥ ७ ॥

लइत्यक्षरमुपदिश्यान्ते णकारमितं पठति प्रत्याहारार्थम् तस्य ग्रहणं
अ, इ, य इत्येतैस्त्रिभिः । निदर्शनम्-अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः । ...
इणो यण् । इत्यादि ॥

जो । पुरुषो हसति । आदि में (हशिच) से उकार सिद्ध करता है । और
शेषोपदेश शल् प्रत्याहार के लिये है जो (अधुक्षत्) आदि में शलइगुपधात्
से क्स सिद्ध करता है । रेफ और ऊष्म वर्णों के सवर्णी नहीं हैं । अर्थात् य,
ल आदि के परे अनुस्वार को जैसे परसवर्ण होता है वैसे रेफ और ऊष्म
के परे नहीं होता । ये अयोगवाह विसर्जनीय जिह्वामूलीय, उपध्मानीय
नुस्वार, यम, । कहीं उपदेश नहीं किये पर इन का श्रवण होता है । इनका
उपदेश करना चाहिये और अयोगवाह ये क्यों कहाते हैं कि
संयुक्त हुए प्रयोगों में आते है और विना उपदेश किये हुए सुने जाते हैं ।
योगवाहों का उपदेश अट् प्रत्याहार के वर्णों में करना चाहिये जिस से (
केण) इत्यादि में णत्व सिद्ध हो । प्र०—य र ल व इन वर्णों का उपदेश
प्रत्याहार में क्यों किया ? उ० (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) सूत्र से सँयन्ता
सँव्वत्सरः । यँल्लोकम् । इन में अनुस्वार को परसवर्ण होता है यह असि-
द्ध के असिद्ध होने से अनुस्वार ही को द्विर्वचन प्राप्त होता है वहां पर
स्वार को परसवर्ण किये पीछे उस का यय्प्रत्याहार में ग्रहण होने से पूर्व अनुस्
को भी जैसे पर सवर्ण हो जाय ।

७—ल इस प्रकार का उपदेश कर अन्त में णकार इत् संज्ञक पढ़ा है प्रत्या-
हार के लिये इस का ग्रहण अ, इ, य इन तीन वर्णों से होता है तद्विषयक
अण् इण् यण् ग्रहण हैं ।

इहेण्ग्रहणानि परेणाण्ग्रहणानि तु पूर्वेणैवाणुदित्येकमेव परेण। अथ किमर्थमणुदित्सूत्रेऽण् ग्रहणं क्रियतेऽणुग्रहणे।ऽन्येन नैवं शक्यमन्तःस्थानामपि सवर्णग्रहणमिष्यते। इह सँय्यन्ता। सँव्वत्सरः। यँल्लोकमित्यनुस्वारस्यानुनासिके यणि परसवर्णे कृते तस्य यण्ग्रहणेन ग्रहणाद्द्वित्व यथा स्यादिति।

किं पुनर्वर्णोपसंक्षाविवायं णकारो द्विरनुबध्यते। एतज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा (व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणमिति) अणुदित्सवर्णं विहाय पूर्वेणाण् ग्रहणं परेणेण् ग्रहणमिति व्याख्यास्यामः। इति भाष्यम् ७

ञमङणनम् ॥ ८ ॥

ञ, म, ङ, ण, न, इत्येतान्यक्षराण्युपदिश्यान्ते मकारमितं पठति प्रत्याहारार्थम्। तस्य ग्रहणं भवति। ञ, म, ङ, इत्येतैस्त्रिभिः। निदर्शनम्-पुमः खय्यम्परे। हलो यमां यमि लोपः। ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्। वर्णाद्वा अमन्ताद्ड इति मकारेणापि ग्रहणमस्य दृश्यते॥ ८॥

इस शास्त्र में इण् प्रत्याहार का ग्रहण पर णकार से है और अण् ग्रहण पूर्व णकार से ही है एक अणुदित्सवर्णस्य० सूत्र में परणकार से अण् प्रत्याहार का ग्रहण है।

प्र०-अणुदित्सूत्र में जो पर णकार से अण् प्रत्याहार का ग्रहण है यह क्यों? अण् ही क्यों न कहा जाता अर्थात् (अणुदित्०) ऐसा क्यों न कहा? उ०-इस प्रकार नहीं कहा जा सकता य, र, ल, व इन वर्णों के भी सवर्ण ग्रहण इष्ट हैं। यहां सँय्यन्ता इत्यादि प्रयोगों में अनुनासिक को यण् मान कर अनुस्वार को परसवर्ण किये पीछे उस यकारादि का यण् प्रत्याहार में ग्रहण होने से उस को (अनचि च) सूत्र से द्वित्वादेश जिस प्रकार हो॥

भाष्यकार कहते हैं क्या फिर जैसे वर्णों की उपपत्ति में वैसे यह णकार दो बार सूत्रों के पीछे बांधा गया अर्थात् यदि और वर्ण पढ़ते तो यह भी संदेह न होता कि कौन सूत्र में पर णकार से प्रत्याहार ग्रहण है कौन में पूर्व से ग्रहण है? आचार्य यह ज्ञापित करते हैं (व्याख्यानत०) यह परिभाषा होती है। अतएव व्याख्या कर देते कि अणुदित्सूत्र को छोड़ के अन्य सब अण्ग्रहण पूर्व णकार से हैं तथा इण् ग्रहण सभी पर णकार से हैं॥ ७॥

८-ञ, म, ङ, ण, न, इन अक्षरों का उपदेश कर अन्त में मकार इत्संज्ञक पढ़ा है प्रत्याहार के लिये उस का ग्रहण ञ, म, ङ इन तीन वर्णों से होता है तद्विषयक सूत्र अम्, यम्, ङम् पढ़ते हैं। परन्तु इत्यादि पाठ में (अमन्ताड्ड.) इस सूत्र में मकार से भी मकार का ग्रहण देखा जाता है इस से अम् प्रत्याहार भी सिद्ध है॥ ८॥

संयोगः । नांपो ओतैनि । रलौ ल्युपधाद्धलादेः संश । झलो झलि । गुपधाद्नितः पराः । अर्थात्प्रत्याहारनिर्दिष्टानां प्रत्याहाराणां परिगणन एकस्मान्ङञणवटाः द्वाभ्यां पश्चात् त्रिभ्यः कणमाः स्युः । ज्ञेयौ चतुर्भ्यः पञ्चभ्यः शल्। षड्भ्यः ॥ तद्यथा । एङ् । यञ् । अण् । हश् । अट् । भष् । अक् । इक् । उक् । अण् । इण् । यण् । अम् । यम् । ङम् । अच् । एच् । ऐच् । यय् । मय् । झय् । खय् । चर् । झर् । खर् । यर् । शर् । हश् । वश् । झष् । जश् । बश् । अल् । हल् । वल् । रल् । झल् । ॥४१॥ एषु प्रत्याहारेषु णकारेण द्विधा पूर्वेण परेणापि तेन संख्याताः ॥४३॥ चयनमपि परिगणनीया ॥

भा० अथ किमिदमक्षरमिति । अक्षरं न क्षरं विद्यादश्नोतेर्वा वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे किमर्थमुपदिश्यते ॥१॥ वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते ॥ २ ॥ सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः सर्ववेदपुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति । इत्यक्षरसमाम्नायः ॥ १५ ॥

होते हैं उनका परिगणन यह है एक २ अक्षर से ङ, ञ, ण, व, ट । दो से प् । तीन २ से क, ण, म । चार चार से च्, य्, पांच से र, और ग्, ल् अनुबन्ध छः से आते हैं । ये सब इसी प्रकार हैं जो संस्कृतमें [illegible]

प्र०-यह अक्षर कौन वस्तु है ? उ०-नाशवान् पदार्थ क्षर कहाता है जो क्षर नहीं किन्तु अविनाशी है उसको अक्षर जानो अथवा अशूङ् व्याप्तौ धातुसे सरन् प्रत्यय करनेसे अक्षर बनता है अर्थ यह होगा कि जो सब में व्याप्त है उसे अक्षर कहते हैं । अथवा पूर्व व्याकरण में अक्षर को वर्ण कहते हैं ॥ प्र०-(वर्णों) का उपदेश क्यों किया ? उ०-वर्णों का ज्ञान वाणी का विषय है जिसमें ब्रह्म वर्तमान है उस ब्रह्म की प्राप्ति और यथेष्ट वर्णों का बोध होने के तथा लघुता अर्थात् प्रत्याहारों से लाघव के साथ कार्य होने के लिये यह उपदेश किया । सो यह अक्षरसमाम्नाय अर्थात् अक्षरोंका आनुपूर्वी कथन समाम्नाय है वाणीमात्र का कथन है इन्हीं वर्णों से वाणी का व्यवहार है दृष्ट अदृष्ट फल या सांसारिक और पारमार्थिक फल से युक्त हो जैसे चंद्रमा तारागण सुभूषित कर रहे हैं वैसे शब्द शास्त्रके बीच यह अक्षर समुदाय जानने योग्य ब्रह्मराशि है इसके जानने से सर्व वेद जानने का पुण्य फल होता है ॥ १५ ॥ इत्यक्षरसमाम्नायः ॥

१६—वृद्धिरादैच् ॥ १ ॥

प०—वृद्धिः १ । १ आदैच् १ । १ ॥

पदा०—वृद्धिः-संज्ञार्थः । आदैच्-आच, ऐच्चेति समाहारद्वन्द्वः । संज्ञिनि-
शः । संज्ञासूत्रमिदम् ॥

सूभा०—आ, ऐ, औ, एते तद्भाविता अतद्भाविताश्च वृद्धिसंज्ञा भवन्ति । वा-
वः । वैनतेयः । सौमित्रिः । आदितेयः । ऐश्वर्य्यम् । औपमन्यवः । शालीयः ।
लीयः ।

भा०—कुत्वं कस्मान्न भवति पदस्येति । भत्वात् । कथं भसंज्ञा । अयस्मया-
नि च्छन्दसीति । छन्दसीत्युच्यते । न चेदं छन्दः । छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति ।
ज्ञासंज्ञिनोरसंदेहो वक्तव्यः । कुतो ह्येतत् । वृद्धिः संज्ञा आदैचः संज्ञिन इति । न पु-
दैचः संज्ञा वृद्धिशब्दः संज्ञीति । अनाकृतिः संज्ञा । आकृतिमन्तः संज्ञिनः । लो-
पि ह्याकृतिमतो मांसपिण्डस्य देवदत्त इति संज्ञा क्रियते । अथवा आवर्त्तिन्यः
ा भवन्ति । वृद्धिशब्दश्चावर्त्तते नादैच्छब्दः । तद्यथा—इतरत्रापि देवदत्त शब्द आव-

---

१—तद्भावित-वृद्धि कहने द्वारा व्याकरण से सिद्ध तथा अतद्भावित-स्वतःसिद्ध
, ऐ, औ ये वृद्धि संज्ञक होते हैं । वासुदेवः । यहां आदि अ को आ, । वैनतेयः ।
ं आदि इ को ऐ सौमित्रिः । यहां उ को औ वृद्धि ७ । २ । ११७ । ११८ से
ती है तथा आदितेयः यहां आदि अ को आ । ऐश्वर्य्यम् । यहां ई को ऐ ।
पमन्यवः—यहां उ को औ वृद्धि ७ । २ । ११७ से होती है ॥

भा०—प्र०—आदैच् यहां कुत्व क्यों नहीं होता जो ८ । २ । ३० सूत्र से पदान्त च-
र्ग को विधान किया है । उ०—भ संज्ञा होने से नहीं होता । प्र०—भ संज्ञा
स से हुई ? उ० अध० १ । ४ । २० सूत्र से । प्र०—उक्त सूत्र वेद में भ संज्ञा
ता है वृद्धिरादैच् सूत्र वेद नहीं ? उ० सूत्र वेद के तुल्य होते हैं । प्र०—संज्ञा
र संज्ञी का असंदेह कहना चाहिये अर्थात् जिस से यह प्रतीति हो कि सूत्र में
ह संज्ञा पद और यह संज्ञी है क्योंकि यह कैसे निश्चय हो कि वृद्धिशब्द संज्ञा
र आदैच् संज्ञी हैं । क्यों नहीं आदैच् संज्ञा और वृद्धिशब्द संज्ञी माना जाता ?
०—जो आकारवान् नहीं वह संज्ञा और जो आकारवान् हैं वे संज्ञी कहाते
। लोक में भी आकारवान् मांसपिण्ड को देवदत्त संज्ञा किई जाती है अथवा
न पदों का आवर्त्तन होता है वे संज्ञा वाचक होते हैं वृद्धि शब्द का आ-
र्त्तन होता है आदैच् शब्द का नहीं जो जैसे यहां लोक में भी देवदत्त शब्द

पृषोदरम्। इत्यादौ विभाषादेशनिवृत्तिः। गुणप्रदेशा मिदेर्गुण इत्येवमादयः॥२॥

१८—इको गुणवृद्धी ॥३॥

प०—इकः ६।१ गुणवृद्धी १।२ अनुवृत्तिपदे—वृद्धिः। गुणः।

पदा०—इकः। गुणवृद्धी=गुणश्च वृद्धिश्चेतीतरेतरद्वन्द्वः। द्वन्द्वेऽपीति वृद्धिशब्दस्य पूर्वनिपाते प्राप्ते पर्वादिपूर्वपदमिति गुणशब्दस्य पूर्वनिपातः। वृद्धिः=वृद्ध्या। गुणः=गुणेन। अर्थवशाद्विभक्तेर्विपरिणामोऽत्र। परिभाषासूत्रमिदम्।

भा०—गुणेन वृद्ध्या वा विधीयमाने गुणवृद्धी इक एव स्थाने भवतः। अनेन नियमोऽनेन विधीयते वृद्धिर्भवति गुणो भवतीति यत्र सूत्रादिक इति तत्रोपस्थितं द्रष्टव्यम्॥

तरति। हरति। चेता। स्तोता। कारकः। हारकः। नायकः। लावकः। इक इति किम्। पारगः। अत्र गमधातोर्डे ३।२।४८ कृते सार्वधातुकार्धधातुकयोः प्राप्तस्य मकारस्य गुणः प्राप्नोति। इग्ग्रहणान्न भवति। गुणवृद्धिग्रहणं स्वसंज्ञया विधाने नियमार्थम्। इह माभूत्। द्यौः। पन्थाः। सः इति॥३॥

शकन्ध्वः। पृषोदकम्। इन प्रयोगों में विभाषा अनुनासिक आदेश नहीं होते। गुण विधान करने वाले सूत्र मिदेर्गुण इत्यादि जानने चाहिये॥२॥

१८—गुण संज्ञा वा वृद्धि संज्ञा से विधीयमान जो गुण वा वृद्धि वे इक् के ही स्थान में होते हैं। अनियमप्रसंग में इस परिभाषा सूत्र से नियम विधान किया जाता है अर्थात् वृद्धि होती है वा गुण होता है ऐसा जहां कहें "इकः" यह षष्ठ्यन्त पद वहां उपस्थित होने योग्य है॥ तरति। हरति। इन में अकार। चेता। यहां एकार। स्तोता। यहां ओकार गुणादेश ७।३।८४ सूत्र से हुआ। कारकः। हारकः। इन में आकार। नायकः। यहां ऐकार और लावकः। यहां औकार वृद्धि ७।२।११५ सूत्र से हुई है। इकः ग्रहण क्यों किया—पारगः। यहां गम् धातु से ३।२।४८ ड प्रत्यय किये पीछे स्थानिवद्भाव से अपुर मकार के स्थान में आदेश संज्ञादेश ७।३।८४ से प्राप्त है वह इग्ग्रहण से नहीं होता। गुणवृद्धि—को आकारादि से विधान करने में नियम के लिये है इस से द्यौः। पन्थाः। सः। इन में होनेवाले औकार आकार अकार वृद्धि वा गुण संज्ञक भी हैं परन्तु संज्ञा शब्द से विधान के नियम से इक् के स्थान में नहीं होते हैं॥३॥

सूत्रा०—गित् कित् ङिन्निमित्ते इको ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः । गित्—
: । भूष्णुः । कित्-भिन्नः । भिन्नवान् । हृष्टवान् । ङित्— चितः । मृष्टः ।
ह्यन्ये वैयाकरणा मृजेरजादौ संक्रमे विभाषा वृद्धिमारभन्ते परिमृजन्ति ।
र्जन्ति । परिममृजतुः । परिममार्जतुरित्याद्यर्थम् । अजादौ संक्रमे अना-
ृति । इतीको गुणवृद्धी सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ ५ ॥

२१—दीधीवेवीटाम् ॥ ६ ॥

—दीधीवेवीटाम् ६ । ३ अनु०—इकः । गुणवृद्धी । न ॥
पदा०—दीधीवेवीटाम्=दीधीश्च वेवीश्च इट् च ते तेषाम् ॥
सूत्रा०—दीधीवेवीटामिको गुणवृद्धी न भवतः । आदीध्यनम् । आवेव्यनम् ।
ध्यकः । आवेव्यकः । भविता ॥ ६ ॥

२२—हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ ७ ॥

प०—हलः १ । ३ अनन्तराः १ । ३ संयोगः १ । १ ॥
पदा०—हलः=हल् च हल् च हलौ हल् च हल् च हल् च हलः । हलौ
श्च ते हलः, अनन्तराः । अविद्यमानमन्तरं येषां तेऽनन्तराः । संयोगः-संज्ञार्थः
सूत्रा०—अन्तररहिता हलः संयोगसंज्ञा भवन्ति । अन्तरं च भिद्यमानी

ा हुआ । भिन्नः । यहां भिद् से कित् क्त प्रत्यय के परे जो गुण ७ । ३ । ८६
है वह न हुआ । हृष्टवान् । यहां क्तवतु प्रत्यय के परे ७ । २ । ११४ से वृद्धि
है सो न हुई । चितुतः । ङित् संज्ञक सार्वधातुक के परे जो ७ । ३ । ८४ गुण
है वह न हुआ । मृष्टः । यहां ङित् सार्वधातुक के परे जो ७ । २ । ११४
द्धि प्राप्त है वह न हुई ॥

भा०-इको गुणवृद्धी यहां अन्य वैयाकरण मृज् धातु से अजादि कित् ङित् के
विकल्प से वृद्धि का आरम्भ करते हैं । परिमृजन्ति । इत्यादि प्रयोगों के लिये इस
२१-दीधी, वेवी, इट् इन के इक् को गुण वृद्धि नहीं होते । आदीध्यनम् ।
व्यनम् ७ । ३ । ८४ से गुण । आदीध्यकः । आवेव्यकः यहां ण्वुल् के परे ७ ।
११५ । से वृद्धि । भविता यहां भविता अंत में 'ता, सार्वधातुक के परे इ को
७ । ३ । ८४ । से प्राप्त है वे न हुए ॥ ६ ॥

२२-अनन्तर अर्थात् अन्तररहित हल् संयोग संज्ञक होते हैं । भिन्नजातियों
े व्यवधान रूप को अन्तर कहते हैं अर्थात् हलों में अच् भिन्न जातीय हैं

१९—न धातुलोपआर्द्धधातुके ॥४॥

प०—न अ० । धातुलोपे ७ । १ आर्द्धधातुके ७ । १ अनु०—इकः । गु०

पदा०—न=निषेधे । धातुलोपे=धातोर्धात्ववयवस्य लोपो यस्मिँस्तत्र आर्द्धधातुके कृत्स्नस्य धातोर्लोपासंभवाद् धातुशब्दोऽत्र धात्ववयवपरः । धातुके=स्पष्टम् ॥

सूत्रा०=धात्ववयवलोपनिमित्ते आर्द्धधातुके परे इको ये गुणवृद्धी न भवतः । लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः । सरीसृपः । धातुग्रहणं लोप इति किम्—भविता । आर्द्धधातुक इति किम्—रोरवीति । इक इति अभाजि । रागः ॥ ४ ॥

२०—क्क्ङिति च ॥५॥

प० क्क्ङिति ७ । १ च ॥ अनु०—इकः । गुणवृद्धी । न ॥

पदा०—क्ङिति=ग् च क् च ङ् च क्ङः इच्च इच्च इच्च इतः । क्ङ यस्य तस्मिन् । च=अव्ययम्

४—धातु के अवयव का लोप कराने वाला आर्द्धधातुक परे हो तो इक् स्थान में जो गुणवृद्धि प्राप्त हैं वे नहीं होते हैं । लोलुवः । पोपुवः । यहां ए लूय, पोपूय, इन यङन्त धातुओं से ३ । १ । १३४ से हुए अच् प्रत्यय के परे २ । ४ । सूत्र से धात्ववयव यङ् का लुक् हुए पीछे ७ । ३ । ८४ से गुण प्राप्त है । तथा म मृजः । सरीसृपः यहां मरीमृज्य सरीसृप्य यङन्तधातुओं से क्रत् १ । ३ । १३४ से अच्प्रत्यय के परे धात्ववयव यङ् का लुक् २ । ४ । ७४ से हुए पीछे ७ । २ । ११४ से वृ और लघूपध ७।३।८६ से गुण प्राप्त हैं वे न हुए । सूत्र में धातु ग्रहण इस लिये है लविता यहां अनुबन्ध के लोप में गुण निषेध न हो । लोप ग्रहण इस लिये कि भविता । यहां आर्द्धधातुक के परे प्राप्त जो धातु को ७ । ३ । ८४ गुणादे उसका निषेध न हो आर्द्धधातुक ग्रहण इसलिये है कि—रोरवीति यहां रोरू यङन्त से २ । ४ । ७४ । यङ्लुक् में सार्वधातुक तिप् के परे गुण निषेध न हो

भाष्यकार कहते हैं कि—'धातुलोपे, यह ऐसा नहीं जानाजाता कि धातुका लो धातुलोप है किन्तु धातुका लोप जिसके परे हुआ हो वह धातुलोप है उस में ॥

२०—गित् कित् ङित् निमित्तक इक् के स्थान में जो गुण वृद्धि प्राप्त हैं वे न होते हैं । जिष्णुः । भूष्णुः यहां गित् स्नु प्रत्यय के परे ७ । ३ । ८४ से गुणप्राप्त

। नासिकाग्रहणं किमर्थम् । मुखवचनोऽनुनासिक इतीयत्युच्यमाने कचटतपा-
मेव प्राप्नोति । इति भाष्यम्=

२४–तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ॥ ९ ॥

प०–तुल्यास्यप्रयत्नम् १ । १ सवर्णम् १ । १ ॥

पदा० –तुल्यास्यप्रयत्नम्–तोलनं तुला । स्त्रियामक्ति ३।३।१०४ तुलया स-
मितं तुल्यम् । ४।४।९१ यत् । अस्यन्ति वर्णाननेन तदास्यम् मुखम् । करणे
३।१।१२४ ण्यत् । आस्ये भवमास्यम् ताल्वादि स्थानम् । प्रयतनं प्रयत्नः । भावे
३।३।९० नङ् । तुल्य आस्ये प्रयत्नो यस्य तत् तुल्यास्यप्रयत्नं तत् भवति । सवर्णम्=
मानं च तद्वर्णम् । समानस्य सः ६।३।८५ वर्णशब्दस्य २।४।३१ नपुंसकत्वम् ॥

सूत्रा०–तुल्य आस्ये प्रयत्नो यस्य वर्णस्य येन वर्णेन सह तत्समानजातीयं
ति सवर्णसंज्ञं भवति । अत्र ताल्वादिस्थानाभ्याभ्यन्तरप्रयत्नाश्च सवर्णसंज्ञायामा-
ियन्ते तानि शिक्षासूत्रेषु यथाभेदमुक्तानि । सुखार्थी । विद्यार्थी । प्रतीतिः ।
ानूदयः । आस्यग्रहणं किम्–क, च, ट, त, पानां भिन्नस्थानानां तुल्यप्रयत्नानां
ाभूत् । तप्तं । तप्तुम् । पकारस्य तकारे ८।४।६४ लोपः स्यात् । प्रयत्नग्रहणं कि-
–इचुयशानां तुल्यस्थानानां भिन्नप्रयत्नानां माभूत् । अश्चश्च्योतति । अत्र सका-
स्य चकारे ८।४।६४। लोपः स्यात् ॥ लृकारस्य लपरत्वम् । इति भाष्यकारे-

---

ोती और नासिका ग्रहण क्यों है–मुखवचन अनुनासिक होताहै इतनेहीके
हने से क, च, ट, त, प, इत्यादि वर्णोंको ही अनुनासिकसंज्ञा प्राप्त होती है ॥८॥

२४–तुल्यहै ताल्वादि स्थान में प्रयत्न जिस वर्णका जिसवर्ण के साथ वह उस
समान जातीयवर्ण के प्रति सवर्णसंज्ञक होताहै । यहां सवर्णसंज्ञामें ताल्वादि स्थान
और आभ्यन्तरप्रयत्नोंका आश्रयकियाजाता है वे यथाभेद शिक्षासूत्रों (अकुहविस-
र्जनीयाः कण्ठ्याः इत्यादिकों) में कहे हैं । सुखार्थी । यहां सवर्णसंज्ञाश्रित पूर्व
र अकारको आकार । विद्यार्थी । यहां पूर्व आकार पर अकार को आकार । प्रती
ति । यहां पूर्व पर इकारों को ईकार । भानूदयः । यहां पूर्व पर उकारों को ऊ-
कार ६।१।१०१ से होता है । इससूत्र में आस्यग्रहण क्यों है क, च, ट, त, प;जो
भिन्नस्थान और तुल्यप्रयत्न वर्ण हैं उनकी सवर्ण संज्ञा न हो । तप्ता । तप्-
तुम् । यहां सवर्णी झर् तकार परे मानकर इस से उत्तर पकार झर् का लोप हो-
जाता । प्रयत्न ग्रहण इसलिये है कि–इ, चवर्ग, य, श ये तुल्य स्थान और भिन्न प्रयत्न
वर्ण हैं उनकी परस्पर सवर्णसंज्ञा न हो । अश्चम् श्च्योतति । यहां सवर्णी झर् च-
कार के परे झ् से उत्तर शकारका लोप होजाता सो नहीं हुआ ॥

२७—अदसो मात् ॥ १२ ॥

प०—अदसः ६ । १ मात् ५ । १ अनु० ईदूदेद् । प्रगृह्यम् ।

पदा०—अदसः=अदसशब्दसंबन्धिनः । मात्=मकारात् ॥

सूत्रा०—अदसशब्दसंबन्धिनो मकारात्परमीदूदेत्प्रगृह्यसंज्ञं भवति । अमी अश्वाः । अमू आसाते । मादेकारो नास्ति । अदसः किम्-अमीरोगोऽस्यास्तीति । अम्यसौ । मात् किम्-अमुकेऽत्र ॥ १२ ॥

२६—ईकारान्त ऊकारान्त एकारान्त द्विवचन प्रगृह्यसंज्ञक होता है । हरी इमौ । यहां ई, इ को ६ । १ । १०१ । से सवर्ण दीर्घ । वायू एतौ । यहां ऊकारको ६ । १ । ७७ से यणादेश और । पचेते इमौ । यहां एकारको ६ । १ । ७८ । अयादेश प्रगृह्यसंज्ञाके कारण से नहीं होता ईदूदेत् ग्रहण क्यों किया । वृक्षावत्र । यहां औकारान्त द्विवचन प्रगृह्य न हो । द्विवचन ग्रहण क्यों किया-कुमार्यत्र । यहां ईकारान्त एकवचन प्रगृह्य न हो । तपरकरण विस्पष्टार्थ अर्थात् ई, ऊ, ए, स्पष्टता से प्रतीतहों इसलिये है ॥

प०—संज्ञासूत्र और परिभाषासूत्र कार्य के समय की देशि उपस्थित होते हैं (एकमगृह्या यवि नित्यम्) प्रगृह्यसंज्ञक प्रकृति से रहैं । है इस प्रगृह्यसंज्ञाके कार्यके समय को देशि "ईदूदेद्" इत्यादि सूत्र उपस्थित होतेहैं अर्थात् संज्ञा परिभाषा सूत्रों का समय वही है जो कार्य सूत्र का समय है इस से "ईदूदेत्०" इत्यादि सूत्र षष्ठाऽध्यायादि में जाने जायंगे प्रथमाऽध्याय में नहीं । तथा संज्ञा और परिभाषा कहां उद्देश की जाय वहीं हैं वहीं प्रथमाऽध्याय प्रथम पाद में माने जायेंगे । यह यथोद्देश पक्ष कहाता है ॥

२७—अदस् शब्द संबंधीमकार से परे जो ईकार ऊकार एकार वे प्रगृह्यसंज्ञक होते हैं । अमी अश्वाः । यहां ईकारको और । अमू आसाते । यहां ऊकारको यणादेश ६ । १ । ७७ । से न हुआ । अदस शब्द के मकार से परे एकार नहीं है । यहां अदस् ग्रहण क्यों किया-अम नाम-रोग जिसके विद्यमान है वह अमी कहाता उस अमी शब्दकी प्रगृह्यसंज्ञा न हो । मात् ग्रहण क्यों है कि-अमुकेऽत्र । यहां अदस् शब्द के मकार से परे एकारको प्रगृह्यसंज्ञा न हो ॥ १२ ॥

ष्टिः । तत्कारः ॥

वा० ऋकारलृकारयोः सवर्णविधिः ॥

होतृलृकारः । होतॄकारः । ऋकारलृकारयोरन्तरतमः ... दीर्घो ... कारएव दीर्घो भवति ॥

यत्प्रति यत्तुल्यास्यप्रयत्नं तत्प्रति तत्सवर्णसंज्ञं भवतीति ॥ ... स्तावत् । उपदेशोत्तरकाला इत्संज्ञा । इत्संज्ञोत्तरकालमादिरन्त्येन स... हारसंज्ञा । प्रत्याहारसंज्ञोत्तरकाला सवर्णसंज्ञा । ... र्णस्य चाप्रत्यय इति सवर्णग्रहणम् । इति भाष्यम् ॥ ९ ॥

२९—नाज्झलौ ॥ १० ॥

प०—न । अज्झलौ । १ । २ अनु०तुल्यास्यप्रयत्नम् । सवर्णम् ॥

पदा०—न=निषेधार्थमव्ययम् । अज्झलौ = अच् हल्चेति । ... तुल्यास्यप्रयत्नम् = तुल्यास्यप्रयत्नौ । सवर्णम् = सवर्णौ । वचनवि... विशेष्यस्य वशात् ॥

सूत्रा०—तुल्यास्यप्रयत्नावप्यज्झलौ सवर्णौ न भवतः । घनहिरण्यम् शीतलम् । वायुपूतम् । पितृराज्यम् । लृलुलसानाम् । एषु सावर्ण्याभावात् १०० दीर्घो न ॥ १० ॥

लृकार के साथ में अण् आदेश लपरक होता है यह भाष्यकार की इ... तवल्कारः । यहां अकार लृकार को गुण एकादेश लपरक होता है ॥

वा०—ऋकार और लृकार की सवर्णता कहना चाहिये । होतृ लृकारः ... तृकारः । यहां ऋ, लृ की सवर्णता से दोनों के स्थान में ऋ, होता—अर्थात् अत्यन्त सदृश दूसरा वर्ण नहीं है ऐसा मान ऋकार ही दीर्घादेश होता

भा०—जिसके प्रति जो तुल्यास्यप्रयत्न हो उसके प्रति वह सवर्ण संज्ञक है ॥ अइउण् से लेके हल् सूत्र पर्यन्तवर्णों का उपदेश पहिले है उपदेश के पी... संज्ञा इस संज्ञा के पीछे प्रत्याहार संज्ञा तदनन्तर सवर्णसंज्ञा और सवर्णसं... पीछे सवर्ण ग्राहकता (वर्ण अपने समान वर्णों का ग्रहण करते हैं) माननी चा...

सू०—तुल्यास्यप्रयत्न भी अच् हल् सवर्णसंज्ञक नहीं होते हैं ॥ घनहिरण्यम् अकार हकार । दधिशीतलम् । यहां इकार शकार । वायुपूतम् । यहां उक... कार । पितृराज्यम् । यहां ऋकार रेफ । लृलुलसानाम् । यहां लृकार लव... परस्पर सवर्णसंज्ञा के न होने से दीर्घादेश ६ । १ । १०१ नहीं होता ॥ १...

२६–ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् ॥ ११ ॥

प०–ईदूदेत् १ । १ द्विवचनम् १ । १ प्रगृह्यम् १ । १ ॥

–ईदूदेत्=ईच ऊश्च एच्चैषां समाहारः । द्विवचनम्=द्वयोर्वचनम् । प्रगृह्यम्=संज्ञापदम् ॥

।० ई, ऊ, ए एतदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं भवति । हरी इमौ । वायू एतौ । पचेते इमौ ।

दिति किम्–वृक्षावत्र । द्विवचनमिति किम्–कुमार्यत्र । तपरकरणं विस्पष्टार्थम् ॥

प०–कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् । यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् । संज्ञा च परिभा-

ष कार्यकालं यथोद्देशं चाभिलक्ष्योपस्थितं भवति । प्रगृह्यः प्रकृत्योपस्थितमिदं

ति ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यमिति ॥ ११ ॥

२७–अदसो मात् ॥ १२ ॥

प०–अदसः ६ । १ मात् ५ । १ अनु० ईदूदेद् । प्रगृह्यम् ।

पदा०–अदसः=अदसशब्दसंबन्धिनः । मात्=मकारात् ॥

भा०–अदसशब्दसंबन्धिनो मकारात्परमीदूदेत्प्रगृह्यसंज्ञं भवति । अमी अश्वाः ।

आगतौ । मादेकारो नास्ति । अदसः किम्–शमीरोगोऽस्यास्तीति । शम्यसौ ।

किम्-अमुकेऽत्र ॥ १२ ॥

२६—ईकारान्त ऊकारान्त एकारान्त द्विवचन प्रगृह्यसंज्ञक होता है । हरी

। यहां ई, इ को ६ । १ । १०१ । से सवर्ण दीर्घ । वायू एतौ । यहां ऊका-

६ । १ । ७७ से यणादेश और । पचेते इमौ । यहां एकारको ६ । १ । ७८ ।

ादेश प्रगृह्यसंज्ञाके कारण से नहीं होता ईदूदेत् ग्रहण क्यों किया । वृक्षावत्र ।

ां औकारान्त द्विवचन प्रगृह्य न हो । द्विवचन ग्रहण क्यों किया–कुमार्यत्र ।

ां ईकारान्त एकवचन प्रगृह्य न हो । तपरकरण विस्पष्टार्थ अर्थात् ई, ऊ,

स्पष्टता से प्रतीतहों इसलिये है ॥

प०–संज्ञासूत्र और परिभाषासूत्र कार्य के समय की दृष्टि उपस्थित होते

(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्) प्रगृह्यसंज्ञक प्रकृति से स्थित रहे इस प्रगृह्यसं-

के कार्य के समय को देख «ईदूदेद्» इत्यादि सूत्र उपस्थित होते हैं अर्थात् संज्ञा

रिभाषा सूत्रों का समय वही है जो कार्य सूत्र का समय है इस से «ईदूदेत्»

यादि सूत्र षष्ठाध्यायादि में माने जायेंगे प्रथमाध्याय में नहीं । तथा संज्ञा

र परिभाषा जहां उद्देश को नाम पढ़ी हैं वहीं प्रथमाध्याय प्रथम पाद में मानें

यें । यह यथोद्देश पक्ष कहाता है ॥

२७–अदस् शब्द संबंधी मकार से परे जो ईकार ऊकार एकार वे प्रगृह्यसं-

क होते हैं । अमी अश्वाः । यहां ईकारको और । अमू आगतौ । यहां ऊका-

ो यणादेश ६ । १ । ७७ । से न हुआ । अदस शब्द के मकार से परे एकार नहीं

। यहां अदस् ग्रहण क्यों किया–शम नाम–रोग जिसके विद्यमान है वह शमी

हाता उस शमी शब्दकी प्रगृह्यसंज्ञा न हो । मात् ग्रहण क्यों है कि–अमुकेऽत्र ।

हां अदस् शब्द के मकार से परे एकारकी प्रगृह्यसंज्ञा न हो ॥ १२ ॥

सूत्रा०—षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा भवति। षट् तिष्ठन्ति। पञ्च तिष्ठन्ति। ...नि । इत्यत्र सन्निपातपरिभाषया जसशसोर्लुङ् न । षट् प्रदेशाः षड्भ्यो ...गेत्यादयः ॥ २३ ॥

३९—डति च ॥ २४ ॥

...—डति १ । १ च । अनु० संख्या ॥

...०—डति=डत्यन्ता । च=षट्संज्ञानुवृत्त्यर्थः ।

...०—डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा भवति । कति सन्ति ॥ २४ ॥

४०—क्तक्तवतू निष्ठा ॥ २५ ॥

...—क्तक्तवतू १ । २ । निष्ठा १ । १ ।

...०—क्तक्तवतू =क्त च क्तवतुश्च तौ । निष्ठा-संज्ञार्थः ।

सूत्रा०—क्तक्तवतू निष्ठासंज्ञौ भवतः । भूतः । भूतवान् । लूनः । लूनवान् । ...ष्ठाप्रदेशा निष्ठेत्येवमादयः ॥ २५ ॥

४१—सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ २६ ॥

प०—सर्वादीनि १ । ३ सर्वनामानि १ । ३ ॥

दा०—सर्वादीनि=सर्व आदिर्येषां तानि । सर्वनामानि=सर्वेषां नामानि ।

...न्ति । यहां षट्संज्ञक से परे जस् का लुक् होता है । शतानि । यहां शत शब्द ...। नुम् किये पीछे नान्त शत शब्द से जस् शस् का लुक् सन्निपातपरिभाषा के बल से ...हीं होता । षट्संज्ञाप्रदेशसूत्र (षड्भ्यो०) इत्यादि समझने चाहिये ॥ २३ ॥

३९—डति प्रत्ययान्त संख्यावाची शब्द षट्संज्ञक होता है । कति तिष्ठन्ति । ...हां कति से परे जस् का ७ । १ । २२ से लुक् होगया ॥ २४ ॥

४०—क्त, क्तवतु निष्ठासंज्ञक होते हैं । लूनः । लूनवान् । इन में क्त, क्तवतु ...त्यय की निष्ठासंज्ञा होने से तकार को नकार ८ । २ । ४४ से हो जाता है । ...ष्ठाप्रदेश सूत्र निष्ठा, इत्यादि हैं ॥ २५ ॥

४१—सर्वादि शब्दरूप सर्वनामसंज्ञक होते हैं । सर्वे । यहां सर्वनाम से परे ...स् को ७ । १ । १७ से शी । सर्वस्मै । यहां ङे को ७ । १ । १४ से स्मै । सर्वस्मात् ...यहां ङसि को ७ । १ । १५ से स्मात् । सर्वेषाम् यहां आम् को ७ । १ । ५२ से

यथा-चित्रवाससमानय। लोहितोष्णीषाः मचरन्ति। तद्गुणमानीयते तद्गुणाश्च मचरन्तीति भाष्यम् ॥ २६ ॥

४२-विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ ॥ २७ ॥

प०-विभाषा १।१ दिक्समासे ७।१ बहुव्रीहौ ७।१। अनु० सर्वादीनि। सर्वनामानि ॥

पदा०-विभाषा=विकल्पार्थः। दिक्समासे=दिशां समासो दिक्समासस्तस्मिन्। बहुव्रीहौ=बहुव्रीहिसंज्ञके ॥

सूत्रा०-दिक्समासे बहुव्रीहौ सर्वादीनि विभाषा सर्वनामानि भवन्ति। उत्तरपूर्वस्यै। उत्तरपूर्वायै। दिग्ग्रहणं किम्-न बहुव्रीहाविति प्रतिषेधं वक्ष्यति तत्र न ज्ञायते क्व विभाषा क्व प्रतिषेध इति दिग्ग्रहणे पुनः क्रियमाणे न दोषो भवति दिगुपदिष्टे विभाषा अन्यत्र प्रतिषेधः। समास ग्रहणं किम्-समास एव यो बहुव्रीहिस्तत्र विभाषा यथा स्यात् बहुव्रीहिवद्भावेन यो बहुव्रीहिस्तत्र माभूत्। दक्षिणदक्षिणस्यै देहि। बहुव्रीहिग्रहणमुत्तरार्थम् ॥ २७ ॥

४३-न बहुव्रीहौ ॥ २८ ॥

प०-न अ०। बहुव्रीहौ ७।१ अनु० सर्वादीनि। सर्वनामानि। समासे। बहुव्रीहौ ॥

मानय। वा लोहितोष्णीषाः मचरन्ति। ऐसे वाक्यों के कहने में उन्हीं गुणवाले को लाते हैं और उन्हीं गुणोंवाले विचरते हैं यह प्रतीत होती है अर्थात् उन्हीं गुणों से पदार्थ का बोध होता है जिन गुणों को देख बहुव्रीहिसमास किया गया है ॥ २६ ॥

४२-दिक् वाचियों के बहुव्रीहि समास में सर्वादिक विकल्प कर सर्वनाम संज्ञक होते हैं। उत्तरपूर्वस्यै। उत्तरपूर्वायै। यहां विकल्प कर सर्वनाम संज्ञा के होने से स्मै को स्याट् ७।३।११४ विकल्प से हुआ। इस सूत्र में दिग् ग्रहण क्यों किया। बहुव्रीहि समास में आगे निषेध कहा है यहां दिग्ग्रहण न करते तो यह निर्णय न होता कि विकल्प कहां करें और निषेध कहां करें। इस सूत्र में यदि दिग् ग्रहण करते हैं तो कोई दोष नहीं आता अर्थात् निर्णय हो जाता है कि दिग्वाचियों के बहुव्रीहि समास में विभाषा अन्य बहुव्रीहि समास में नित्य निषेध होता है। समास ग्रहण क्यों किया-अर्थात् समास ही जो बहुव्रीहि है उस में विभाषा जैसे हो बहुव्रीहिवद्भाव से जो बहुव्रीहि होता है उस में न हो। दक्षिणदक्षिणस्यै देहि। यहां ८।१।१० द्वित्व और बहुव्रीहिवद्भाव होकर नित्य सर्वनामसंज्ञा हुई। बहुव्रीहि ग्रहण अगले सूत्र के लिये है ॥ २७ ॥

४३-बहुव्रीहि संज्ञक बहुव्रीहि समास विषय में सर्वादि शब्दरूप सर्वनाम

सू०४७०—सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति। सर्वे। सर्वस्मात्। सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्। तदन्तस्यापीयं संज्ञा द्वन्द्वेचेति सर्वत्र। उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तस्तस्येह पाठोऽकजर्थः। इति द्वावप्यदन्ताविति पक्षे एक उदात्तो द्वितीयोऽनुदात्तः। स्तदन्ताः शब्दा गृह्यन्ते। समः सर्वपर्य्यायो गृह्यते न तुल्यपर्यायः। समानामिति निर्देशात्। तेन समे देशे यजेतेत्यादि साधूनि।

संज्ञोपसर्जनप्रतिषेधः। सर्वो नाम कश्चित्तस्मै सर्वाय देहि। सर्वमतिक्रान्तः सर्वस्तस्मै—अतिसर्वाय देहि॥

५०—बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि।

सुट् और सर्वस्मिन् यहां ङि को ७। १। १५ से स्मिन् आदेश होता है। न्त शब्द की भी सर्वनामसंज्ञा होती है द्वन्द्वे च इत्यादि बाधक से अर्था निषेध समुदाय की सर्वनामसंज्ञा का है। बिना तदन्तविधि के समुदा संज्ञा का प्रसंग हो गया है। बिना प्रसंग द्वन्द्वे च इत्यादि निषेध क्यों उभ शब्द नित्य द्विवचनान्त है-उसका सर्वादि गण में पाठ अकच् प्रत्यय ३। ७१ से होने के अर्थ है। उभकौ। यहां उभ से अकच् हुआ। त्य, त्व ये अदन्त हैं। इस पक्ष में एक उदात्त और दूसरा अनुदात्त माना जाता है। और डतम ये दोनों प्रत्यय हैं अतएव ये जिन के अन्त में हैं वे कतर, कतम लिये जाते हैं। सम शब्द सर्व पर्यायवाची अर्थात् सर्व शब्द को कहने व लिया जाता है तुल्य अर्थ वाला नहीं क्यों कि (यथा०) इस सूत्र में तुल सम शब्द का षष्ठी बहुवचन (समानाम्) कहा। यदि सर्वनाम संज्ञा में तुल्य वाले का ग्रहण होता तो (समेषाम्) कहते। इसके सिद्धान्त से। समे देशे यजे इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं॥

संज्ञावाचि और उपसर्जनसंज्ञक शब्दों की सर्वनाम संज्ञा न होवे। स य देहि। अतिसर्वाय देहि। इन प्रयोगों में ङे को स्मै ७।१।१४ से न हुआ॥

५०—बहुव्रीहि समास में तद्गुणसंविज्ञान भी होता है। जैसे चित्रगु

---

* सर्व। विश्व। उभ। उभय। डतर। डतम। इतर। अन्य। अन्यतर त्यत्। त्वेति केचित्। त्व। नेम। सम। सिम। पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधरा व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयो त्यद्। तद्। यद्। एतद्। इदम्। अदस्। एक। द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भव किम्। इति सर्वादिः॥

योगाङ्के योगविभागः करिष्यते । तृतीया । तृतीयासमासे सर्वादीनि सर्वनामसं-
ज्ञानि न भवन्ति । मासपूर्वाय देहि । संवत्सरपूर्वाय देहि । ततः—असमासे । अ-
मासे च तृतीयायाः सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि न भवन्ति । मासेन पूर्वाय देहि ।
वत्सरेण पूर्वाय देहि । इति भाष्यम् ॥ २९ ॥

४५-द्वन्द्वे च ॥ ३० ॥

प०-द्वन्द्वे० ७ । १ । च । अनु०-सर्वादीनि । सर्वनामानि । समासे । न ।

पदा०-द्वन्द्वे=द्वन्द्वसंज्ञके । च=समुच्चयार्थः ।

सूत्रा०-द्वन्द्वे च समासे सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि न भवन्ति । पूर्वोत्तरा-
णाम् । दक्षिणोत्तरपूर्वाणाम् ॥ ३० ॥

४६-विभाषा जसि ॥ ३१ ॥

प०-विभाषा १ । १ । जसि ७ । १ अनु०-सर्वादीनि । सर्वनामानि । समासे ।
। द्वन्द्वे ॥

पदा०-विभाषा=विकल्पार्थः । जसि=जसः स्थानीये ।

सूत्रा०—जसःस्थानीये कार्ये कर्त्तव्ये द्वन्द्वे समासे सर्वादीनि सर्वनामानि
विभाषा न भवन्ति । वर्णाश्रमेतरे । वर्णाश्रमेतराः । जस कार्ये प्रति विभाषा
द्वन्द्वे चेति प्रतिषेधात् । इतिभाष्यम् ॥ ३१ ॥

समास से अतिरिक्त अन्य अंश भी सूत्र का जैसे प्रतीत हो और योगाङ्क प्रतीत हो
इस से योगविभाग करेंगे। जैसे-तृतीया समास में सर्वादि सर्वनामसंज्ञक नहीं होते
हैं। यहां तृतीया यह लुप्तषष्ठी पद है और समास पदकी अनुवृत्ति पिछले सूत्र से
किई । इस अर्थ से मासपूर्वाय सिद्ध हुआ। पीछे असमासे पद लिया । तृतीया के
असमास में अर्थात् तृतीया समासार्थ वाक्य में सर्वादि सर्वनाम संज्ञक नहीं होते हैं
जैसे । मासेन पूर्वाय। इस वाक्य में सर्वनामसंज्ञा का निषेध हुआ ॥ २९ ॥

४५ द्वन्द्व समास में भी सर्वादिक सर्वनामसंज्ञक नहीं होते हैं। पूर्वोत्तराणाम्=
पूर्वउत्तरदेशोंका । दक्षिणोत्तरपूर्वाणाम्=दक्षिण उत्तर पूर्वदेशोंका । इसमें सर्वनाम
संज्ञा न होने से आम् को सुट् ७ । १ । ५२ । से न हुआ ॥ ३० ॥

४६-जस्स्थानी कार्य कर्त्तव्य हो तो द्वन्द्व समास में सर्वादिक सर्वनामसंज्ञक वि
कल्पसे नहीं होते हैं। वर्णाश्रमेतरे। वर्णाश्रमेतराः। यहां सर्वनाम संज्ञा पक्षमें जस्
स्थानीय शीभाव होता है और दूसरे पक्षमें दीर्घ, हस्व, विसर्जनीय होते हैं ॥

भा०-जस् के स्थान में जो कार्य होता है उस कार्य के प्रति यह विभाषा है
क्योंकि कारण द्वन्द्वे च, यह प्रतिषेध विद्यमान है ॥ ३१ ॥

भा०-तसिलादयः प्राक्पाशपः । शसप्रभृतयः प्राक्समासान्तेभ्यः । अम् आम् ऽर्थे । तसिवती । नानाञौ । इति परिगणनम् ॥

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ॥
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

अव्ययमदेशः अव्ययादाप्सुप इत्येवमादयः ॥ ३६ ॥

५२-तद्धितश्चासर्वविभक्तिः ॥ ३७ ॥

प०—तद्धितः १ । १ च अ० । असर्वविभक्तिः १ । १ अनु०-अव्ययम् ।
पदा०—असर्वविभक्तिः = न सर्वा असर्वा असर्वा विभक्तिरुत्पद्यते यस्मात्सः ।
सूत्रा०—यस्मात्सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययसंज्ञो भवति । ततः । ः । तत्र । यत्र । यदा । तदा । तद्धित इति किम्-एकः । द्वौ । बहवः । अ-विभक्ताविति किम् औपगवः ॥ ३७ ॥

भा०-पाशप् प्रत्यय के पूर्व तसिल् आदि प्रत्यय । समासान्त प्रत्ययों के पूर्व ् आदि प्रत्यय । अम्, आम्, इत्यर्थे, तसि, वति । ना और नाञ् ये तद्धित प्रत्यय जिन के अंत में हों वे तद्धितान्त अव्यय संज्ञक होते हैं । यह परिगणन भाष्य है । जो तीनों लिंग सब विभक्ति और सब वचनों में एकसा रहे अन्यथा न वह अव्यय कहाता है । ॥ ३६ ॥

। प्रतान् । आकृतिगणोऽयम् । तेनान्येपि । तथाहि । माङ् । अम् । कामम् । कामम् । भूयस् । परम् । साक्षात् । साचि । सत्यम् । मंक्षु । संवत् । अभीक्ष्णम् । ईषत्यम् । सपदि । प्रादुस् । आविस् । अनिशम् । नित्यम् । नित्यदा । सदा । अजस्रम् । सततम् । उषा । ओम् । भूर् । भुवर् । झटिति । तरसा । सुष्ठु । । अन्तरा । पुरा । मिथु । विषक् । भाजक् । अन्वक् । चिराय । चिरम् । चिरात्राय । चिरस्य । चिरेण । चिरात् । अस्तम् । आनुषक् । अनुषक् । अनुषट् । नम् । अन्तर् । स्थाने । वरम् । दुष्ठु । बलात् । शु । अर्वाक् । शुदि । वदि । ्रादि । नियाताः स्वरादये उदाहृते ॥

५२-जिस से सब विभक्ति न उत्पन्न हो वह तद्धितान्त अव्यय संज्ञक होता । ततः । यतः । तत्र । यत्र । यदा । तदा । इनमें समर्थ विभक्ति (जिस विभक्ति के विषय में तद्धित किया हो उस) के एक वचनादि का २ । ४ । ८२ से ् होजाता है । तद्धित पदका क्यों किया-एकः । द्वौ । बहवः । इन में प्रकृति ये प्रधान है इस से सब विभक्ति वचन नहीं होता पर तद्धितान्त नहीं, इसने अव्यय संज्ञा नहीं होती है । असर्वविभक्तिपदका क्यों किया-औपगवः । यद्यपि हां उपगुशब्द से अण् तद्धितान्त है तथापि इस से सब विभक्ति और सब वचन ोते हैं इस से अव्ययसंज्ञा नहीं होती ॥

५३—कृन्मेजन्तः ॥३८॥

प०—कृत् १ । १ मेजन्तः १ । १ अनु०—अव्ययम् ॥

पदा०—मेजन्तः=म् च एच मेचौ अन्तश्चान्तश्च अन्तौ मेचावन्तौ य

सूत्रा०—मेजन्तं यत्कृदन्तं शब्दस्वरूपं तदव्ययं भवति। स्मारंस्मार
सौरापः । ताम्रापेपे रत्नानाम् । कर्त्वे दधाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे
इति वचेस्तुमर्थे सेसेनिति से प्रत्यये कृत्वे पन्वे च कृते रूपम् । एपे इ
से प्रत्यये गुणे पन्वे च कृते रूपम् । जीवसे इति जीवेरसे प्रत्यये रूप
इति दृशेः केन् प्रत्ययो निपात्यते । दृशे विख्ये चेति । अ ... देशि
पत्ययं तेन । आधये । चिकीर्षवे । कुम्भकारेभ्यः । इह माभूत् ॥

५४—क्त्वातोसुन्कसुनः ॥३९॥

प०—क्त्वातोसुन्कसुनः १ । ३ अनु०—अव्ययम् ॥

पदा०—क्त्वातोसुन्कसुनः=क्त्वाश्च तोसुन्च कसुन्चैते ।

सूत्रा०—क्त्वा तोसुन् कसुन् इत्येतदन्तं शब्दरूपमव्ययसंज्ञं भवति ।
स्मृत्वा । पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः । पुरावत्सानामपाकर्तोः । ...

५३—म् ए ओ ऐ औ ये हैं अन्त में जिस के ऐसा जो कृत्प्रत्ययान्त
स्वरूप वह अव्ययसंज्ञक होता है । स्मारंस्मारम् । यहां स्मृ-से णमुल् ३
२२ से हुआ मान्त होने से अव्ययसंज्ञा हुई । वचे-यहां वच् धातु से ३ ।
सूत्र से से प्रत्यय किये पीछे ८ । २ । ३० से कुत्व ८ । ३ । ५९ से षत्व
पर सिद्ध होता है । एषे-इष् धातु से से प्रत्यय ३ । ४ । ९ के परे ७ । ३
से गुण और ८ । ३ । ५९ से षत्व करने पर सिद्ध होता है । जीवसे-जीव
से ३ । ४ । ९ असे प्रत्यय होने से सिद्ध होता है । दृशे-दृश् धातु से ३ । ४
केन् प्रत्यय निपातन किया जाता है । युक्त प्रयोग एजन्त कृदन्त
अव्यय संज्ञक होते हैं । अन्त ग्रहण सूत्र में इसलिये है कि-उपदेश
मान्त एजन्त का ग्रहण हो । पीछे एजन्त हुओं का ग्रहण न हो इस से
धये । चिकीर्षवे । कुम्भकारेभ्यः । इन की अव्ययसंज्ञा नहीं होती क्योंकि
ये उपदेशकाल में एजन्तादि नहीं हैं ॥

५४—क्त्वा, तोसुन्, कसुन्, ये अन्त में जिस के हों वह शब्दस्वरूप
संज्ञक होता है । करवा । स्मृत्वा । इन में अव्ययसंज्ञा होने से सुप्लुक्
८८ से हो जाता है । पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः । पुरा वत्सानामपाकर्तोः
में भावलक्षणे० ३ । ४ । १६ सूत्र से इण् और कृञ् धातु से तोसुन्

सूत्रा०—शि इत्येतत् सर्वनामस्थानसंज्ञं भवति । कुण्डानि । वनानि ।

अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा । न्यायोयम् । ...

ङित्यस्यैव प्राप्ता सर्वनामस्थानसंज्ञा निषिध्यते नतु शीत्यस्य । सर्वन...

सर्वनामस्थाने चासंबुद्धावित्येवमादयः ॥ ४१ ॥

५७—सुडनपुंसकस्य ॥ ४२ ॥

प०—सुट् १ । १ अनपुंसकस्य ६ । १ अनु०—सर्वनामस्थानम् ।

पदा०—सुट्=प्रत्याहारः सु, औ, जस्, अम्, औट् एषां संज्ञा अनपुं नपुंसकस्य न भवति ॥

सूत्रा०—सुट् सर्वनामस्थानसंज्ञं भवति नपुंसकस्य न भवति । राजा जानौ । राजानः । राजानम् । राजानौ । सुडिति किम्=राज्ञः पश्य । कस्येति किम्—सामनी ॥

भा०—असमर्थसमासश्चायं द्रष्टव्यः । अनपुंसकस्येति । नहि नञो नपुं सामर्थ्यम् । केन तर्हि । भवतिना । न भवति नपुंसकस्येति भाष्यम् ॥ ४२

५८—नवेति विभाषा ॥४३॥

प०—न । वा । इति । विभाषा ॥

का निषेध होता है किन्तु दूरस्थ पूर्व सूत्र से प्राप्त जो रूपान्तर शि को सर्व स्थानसंज्ञा उसका निषेध नहीं होता है। सर्वनामस्थान प्रदेश में सर्वनाम संबुद्धौ इत्यादि है ॥ ४१ ॥

५७—सुट् सर्वनामस्थानसंज्ञक होता है नपुंसकलिंग का नहीं होता है । राजानौ । राजानः । राजानम् । राजानौ । इन में सुट् की सर्वनामस्था होने से उपधा को दीर्घ ६ । ४ । ८ से होता है । सुट् ग्रहण क्यों किया पश्य । यहां सर्वनामस्थानसंज्ञा न हुई। अनपुंसक ग्रहण क्यों किया—साम यहां भी सर्वनामस्थानसंज्ञा न हुई ॥

भाष्यकार कहते हैं यह 'अनपुंसकस्य, असमर्थ समास देखने योग्य है समास में नपुंसक पद के साथ नञ् का सामर्थ्य नहीं है तो किस के साथ भवति क्रिया के साथ अर्थात् नपुंसकलिङ्गका सुट् सर्वनामस्थानसंज्ञक होता है ॥ ४२ ॥

५८—निषेध और विकल्प की विभाषासंज्ञा होती है विभाषा सूत्रों निषेध और विकल्प उपस्थित होते हैं। यहां निषेध से समास किये हुए

पदा०—न=निषेधार्थः । वा=विकल्पार्थः । इति=अर्थ-निर्देशार्थः । विभाषा=
ापदम् । संज्ञासूत्रम् ॥

सूत्रा०—निषेधविकल्पयोर्विभाषासंज्ञा भवति । विभाषा प्रदेशेषु निषेध-
कल्पावुपतिष्ठेते । तत्र निषेधेन समीकृते विषये पश्चाद्विकल्पः प्रवर्त्तते । उभयत्र
भाषाः प्रयोजयन्ति । विभाषाश्वेः । शुशाव । शुशुवतुः । शिश्वाय । शिश्वियतुः ॥

भा०—नवेति विभाषायामर्थसंज्ञाकरणम् । तर्हि वक्तव्यं न वक्तव्यम् ।
ति करणोर्थनिर्देशार्थः । इति भाष्यम् ॥

प्राप्तविभाषासु नैतत्संज्ञाया उपयोगः । ताभिः पक्षे निवृत्तिरेव क्रियते । प-
प्रवृत्तिः स्थितैव । अप्राप्तविभाषास्वपि न, ताभिः पक्षे कार्यस्य प्रवृत्तिः क्रियते ।
क्षान्तरे त्वप्रवृत्तिः स्थितैव । तस्मादुभयत्र विभाषार्थैवेयं संज्ञा । तत्र नित्यप्राप्ति-
त्यनेन प्रतिषिद्धा पश्चाद्वेत्यनेन भवतीति प्राप्तेऽप्राप्ते च विकल्पसिद्धिः फलमित्य-
प्राह कैय्यटः । विभाषाप्रदेशाः विभाषाश्वेरित्येवमादयः ॥ ४३ ॥

४९—इग्यणः संप्रसारणम् ॥ ४४ ॥

य में पीछे विकल्प प्रवृत्त होता है । उभयत्र विभाषा इस सूत्र का प्रयोजन
ते हैं जैसे 'विभाषा श्वेः, यह उभयत्र विभाषा है क्योंकि किंत् विषय में इ
। १५ सूत्र से संप्रसारण प्राप्त है अन्यत्र अप्राप्त है यहां प्राप्तांश को (न) से
िषेध करके पीछे (वा) से विकल्प होता है । शुशाव । शुशुवतुः । शिश्वाय
शिश्वियतुः । इस न वेति विभाषा सूत्र में अर्थ निर्देश करना चाहिये । अर्थात् न, वा
न के अर्थ की विभाषासंज्ञा हो । तो वह अर्थ शब्द कहना चाहिये? । उ०-नहीं,
ति शब्द का पाठ अर्थ निर्देशार्थ किया है ॥

प्राप्तविभाषाओं में इस संज्ञा का उपयोग नहीं है उन से एक पक्ष में नि-
वृत्ति ही की जाती है प्रवृत्ति स्थिर ही है । अप्राप्तविभाषाओं में भी इस का
उपयोग नहीं उन से एक पक्ष में कार्य की प्रवृत्ति की जाती है अन्य पक्ष में
अप्रवृत्ति स्थिर ही है इस से उभयत्र विभाषार्थ ही यह संज्ञा है यहां (न) इस
ंश से नित्य प्राप्ति का प्रतिषेध कर (वा) इस अंश से विकल्प कर कार्य हो-
ता है इस प्रकार प्राप्त और अप्राप्त में विकल्प सिद्धि फल इस संज्ञा का प्रयोजन
कैय्यट आचार्य ने कहा है विभाषा प्रदेश सूत्र-विभाषाश्वेः । इत्यादि हैं ॥ ४३ ॥

४९-इक् जो यण् के स्थान में हुआ वा होने वाला है उस की संप्रसारण

सूत्रा०—ङिदनेकाल्प्यादेशोऽन्त्योऽलोऽन्त्यस्य भवति । सखा । होता । पोता ।
के टिरकारणस्य गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थत्वात्परत्वात्सर्वादेशो भवति । विधात् ।
त् ।

भा०—तातङि ङित्करणस्य सावकाशत्वाद्विप्रतिषेधात्सर्वादेशः ॥

६८—आदेः परस्य ॥ ५३ ॥

प०—आदेः ६ । १ परस्य ६ । १ अनु०—आदेशे । अलः ।

सूत्रा०—परस्य विधीयमान आदेशस्तस्यादेरलो भवति । परस्यादेशस्तत्र
यने यत्र पञ्चमीनिर्देशः । आसीनो यजते । द्वीपम् । अन्तरीपम् ॥ ५३ ॥

६९—अनेकाल्शित् सर्वस्य ॥ ५४ ॥

प०—अनेकाल्शित् १ । १ सर्वस्य ६ । १ अनु०—आदेशे ।

[त]०—अनेकाल्शित्=अनेके अलः सन्त्यस्मिन्नित्यनेकाल्, श् इत् यस्य सः शित्
काल् च शिच्चानयोः समाहारः । सर्वस्य=षष्ठीनिर्दिष्टस्य । परिभाषासूत्रम् ॥

सूत्रा०—अनेकालादेशः शिच्च सर्वस्य षष्ठीनिर्दिष्टस्य स्थाने भवति । जहि ।
दानि ॥

काल् और ङित् है परन्तु तातङ् में ङकार गुण वृद्धि प्रतिषेध के लिये है इस
और परत्व से सर्वादेश होता है । विधात् । यहां विद्व और धृ धातु
रे लोट् लकार के तु के स्थान में ७।१।३५ से बहर तातङ् सर्वादेश होता है ॥

भा०—तातङ् में ङित्करण सावकाश है अर्थात् गुण वृद्धि प्रतिषेधार्थ ङकार
इस से और विप्रतिषेध से सर्वादेश होता है ॥ ५२ ॥

६८—पर को जो विधीयमान आदेश वह उस के आदि अल् को होता है ।
को आदेश वहां विधान किया जाता है जहां पञ्चमी निर्देश हो । आसीनो
ते । यहां । ईदासः ७ । २ । ८३ सूत्र से आस से परे आन के आकार को ई-
र होता है । द्वीपम् । अन्तरीपम् । इन में ६ । ३ । ९७ से अप् शब्द के अ-
र को ईकार हुआ ॥ ५३ ॥

६९—अनेकाल् आदेश और शिदादेश सब षष्ठीनिर्दिष्ट के स्थान में होते हैं ।
हि । यहां अनेकाल् ज आदेश ६ । ४ । ३६ से हन् मात्र को हुआ । कुण्डानि ।
ं शित् शि आदेश जस्मात्र को हुआ ॥

५०—अनुबन्धसहित अनेकाल् नहीं होता है । अतएव इदम् शब्द को ५ । ३ । ३
श् और हलदीर्घ अष्टन् शब्द से जस् शस् को ७।१।२१ से औश् आदेश जो शित्

प०—नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वं भवति । इश् । ओश् ॥ ५४ ॥

७०—स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥ ५५ ॥

प०—स्थानिवत् अ० । आदेशः १ । १ अनल्विधौ ७ । १

पदा०—स्थानिवत् = स्थानमस्यास्तीति स्थानी स्थानिना तुल्यम् । विधौ=अलमाश्रितोऽलाश्रितः अलाश्रितश्चासौ विधिः अल्विधिः न अल्विधिः अनल्विधिस्तस्मिन् । शाकपार्थिवादिवत्समासः । ... भवति ।

सूत्रा०—आदेशः स्थानिवद्भवति नत्वल्विधौ । स्थानिनि सति तदादेशोऽपि भवति ॥

प्रयोजन धात्वङ्गकृत्तद्धिताव्ययसुप्तिङ्पदादेशाः । भवितव्यम् । केन स्याम् । प्रकृत्य । दाधिकम् । प्रस्तुत्य । वृक्षाय । भवतम् । भवत । नमो वः तेनोऽस्तु । वत्करणं किम्—स्थान्यादेशस्य संज्ञा मा विज्ञायीति । आतेः पिट् । आदेशग्रहणं किम्—एकदेशेऽप्यादेशेऽपवद्भावो न स्यात् । पचतु । घाविति किम्—द्यौः । पन्थाः । रा इति ॥

मानकर प्रकृतिमात्र को होते हैं प्रकार अनुबन्ध के सहित होने से अनेकाल् तो शित् प्रत्यय निरर्थक हो जावे ॥ ५४ ॥

७०—आदेश स्थानी के तुल्य होता है पर अल्विधि में स्थानिवद्भाव नहीं होता । जिस में स्थानी की विद्यमानता में जो कार्य होता है वह भी हो ।

प०-सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः । तेन भूतवदित्यतिदेशे लङादयो ना-
दिश्यन्ते ॥ ५५ ॥

७१-अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥ ५६ ॥

प०-अचः ६ – ५ । १ परस्मिन् ७ । १ पूर्वविधौ ७ । १ अनु० आदेशः ।
स्थानिवत् । अल्विध्यर्थमिदम् ॥

प०-परस्मिन् = निमित्तसप्तमी । पूर्वविधौ = विषयसप्तमी ॥

सूत्रा०-परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवद्भवत्यादेशवतोऽचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य वि-

---

होता है-भवताम् । भवत । यहां ताम् । त । इन तिङों के स्थान में ३।४।१०१
हुए ताम् । त । आदेश तिङ्वत् होते हैं इस से पदसंज्ञा होती है । ममोदः
त्तरः । ते मोऽस्तु । इन में-युष्मभ्यम् । अस्मात् । इन पदों के स्थान में ८ ।
। २१ से वस् नस् पदादेश होते हैं उनको पद के मुख्य पदत्व मान कर सत्व
आदि होते हैं । अनल्विधौ क्यों है-स्थानी आदेश की संज्ञा न जानी जाय । आ-
न । आवधिष्ट । यहां आङ्पूर्वक हन् धातु से आत्मनेपद १ । ३ । २८ कहा
वह स्थानी और आदेश दोनों से होता है । यदि संज्ञा होजाय तो आदेश
हो आत्मनेपद हो स्थानी से न हो । आदेश ग्रहण क्यों है—एक देश को
आदेश होने से अन्यवद्भाव न हो अर्थात् (एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति)
परिभाषा नहीं कहनी होती है । पचतु । यहां तिप् के एक देश इकार को
उकारादेश ३ । ४ । ८६ होने से अन्य वद्भाव नहीं होता है । अनल्विधिग्रहण
क्यों है-द्यौः । पन्थाः । सः । इन में दिव् के अन्त्य व् को औ पथिन् के अ-
न्त्य न् को आ और तद् के अन्त्य द् को अ आदेश जो होते हैं वे स्थानिवत्
नहीं होते अन्यथा हल्ङ्याप्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् ६ । १ । ६८ से प्रत्ययलक्षण होता है

श्री कर्त्तव्ये । अत्र स्थानिनि सति यद्भवति तदादेशेऽपि भवति । स्थानि
यन्न भवति तदादेशेऽपि न भवतीति भावाभावयोरुभयोरप्यतिदेशोऽयमनु
पट्व्या । मृद्व्या । पटयति । लघयति । अचः किम्–आगत्य । अधिगत्य ।
परस्मिन्निति किम्–दुवजानिः । पूर्वविधाविति किम्–हैंगाः । नैधेयः ॥ ५६ ॥

७२–न [illegible]

जश्चर्विधिषु ॥ ५७ ॥

प० न अ० । पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु ७

अनु०–आदेशः । स्थानिवत् । अचः । परस्मिन् । पूर्वविधौ ॥

ङीप्+टा । मृदु+ङीप्+टा । ऐसी स्थिति में अनुबन्धों की हल् संज्ञा कि
पटु+ ई आ । मृदु+ई+आ । यहां उस में प्रथम पर ईकार को यणादेश हुआ
और उस का स्थानिवद्भाव होने से पूर्व जो टकार है उन को यणादेश
है । पटयति । लघयति । इन में तत्करोति तदाचष्टे इस अर्थ में णि
पीछे पटु लघु की टि का लोप ६ । ४ । १५५ से जो हुआ है वह
७ । २ । ११६ से करने में स्थानिवत् होता है इस से वृद्धि नहीं होती है।
ग्रहण क्यों किया–आगत्य । अधिगत्य । इन में गम् के अनुनासिक म् का ६।४
से लोप हुआ उस का तुग्विधि ६ । १ । ७१ के प्रति स्थानिवद्भाव नहीं हो
परस्मिन् ग्रहण क्यों है–दुवजानिः । यहां जाया शब्द के अन्त्य आकार को
मान्त निङ् आदेश ५ । ४ । १३४ होता वह परनिमित्तक नहीं है अतएव
के प्रति स्थानिवत् नहीं होता है । पूर्वविधि ग्रहण क्यों किया । हैंगाः ।
को यणादेश वृद्धि हुई वह यस्येतिलोप ६।१।६९ करने में स्थानिवत् नहीं
नैधेयः । यहां निपूर्वक धा धातु से ३ । ३ । ९२ से कि प्रत्यय किये पीछे
आकार का जो लोप ६ । ४ । ६४ से हुआ है वह ४ । १ । १२२ द्व्यचलक्षण
प्रत्यय करने में स्थानिवत् नहीं होता है ॥ ५६ ॥

अच् आदेशवाले अच् में पदान्तावयवादि पूर्वविधि कर्त्तव्य हों तो
स्थानिवत् नहीं होता है । पदान्त विधि में । कान्त । कानि सन्ति ।
६ । ४ । १११ से जो सार्वधातुक को परनिमित्त मान अस धातु का
हुआ है वह स्थानिवत् हो तो पूर्व को आय और यण् आदेश हो
नहीं होते हैं । द्विर्वचनविधि में दद्ध्यत्र । मद्ध्वत्र । इन में इकार उकार
के को यणादेश हुआ है यदि वह स्थानिवत् हो तो धकार को द्वित्वादि

अत्र णिलोपस्य स्थानिवत्त्वे ऊठ् न स्यात् । लुकि—पञ्चभिः पट्वीभिः क्रीतः पञ्चपटुः । आर्हादिति ठक् तस्याध्यर्धपूर्वेति लुक् । लुक्तद्धितलुकीति ङीपो लुक् । अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग् बाधत इति यणादेशः पूर्वं न प्रवर्त्तते कृते तु लुकि तस्य स्थानिवत्त्वाद्यणः प्रसंग इति स्थानिवद्भावनिषेध उच्यते । उपधात्वे पारिखीयः । अत्र परिखाशब्दाच्चातुरर्थिकेऽणि कृते आकारलोपस्य स्थानिवत्त्वात् पारिखे भव इति वृद्धाट्ठकेकान्तखोपधादिति छो न स्यात् ॥ ५७ ॥

७३—द्विर्वचनेऽचि ॥ ५८ ॥

प०—द्विर्वचने ७।१ अचि ७।१ अनु०—आदेशः । अचः । स्थानिवत् । रूपातिदेशोऽयम् । स०—द्विर्वचनं च द्विर्वचनश्च द्विर्वचन तस्मिन् । नपुंसकस्यैकशेष एकत्वं १।२।६९ च । सूत्रा०—द्विर्वचननिमित्तेऽच्यजादेशः स्थानिवद् भवति द्विर्वचन एव कर्त्तव्ये । आल्लोपोपधालोपणिलोपयणायवायावादेशाः प्रयोजनम् । आल्लोपे—पपतुः । अत्र—आतो लोप इत्याकारलोपे कृते तस्य स्थानिवत्त्वेनैकाच्त्वाद् द्विर्वचनं भवति । उपधालोपे—जघ्नतुः । गमहनेति उपधालोपे कृते तस्य स्थानिवत्त्वाद् द्विर्वचनं भवति । णिलोपे—आटिटत् । अत्र णिचि लुङि चङि णिलोपे कृते तस्य स्था-

---

रूप । इस अवस्था में (णाविष्ठवत्कार्यम्) यह वचन अतिदेश किये पीछे टिलोप और णिलोप हुआ । यहां णिलोप को स्थानिवद्भाव होतो तब भी पूर्व को ऊठ् न हो । लुग्विषय में—पञ्चभिः पट्वीभिः क्रीतः । यहां पञ्चन्+भिस्+पटु+ङीप्+टाप् । इस अवस्था में क्रीतार्थेठञ् ५ । १ । ३७ प्रत्यय का लुक् ५ । १ । २८ हुए पीछे जो ङीप् का लुक् १।२।४९ हुआ है यदि वह स्थानिवत् हो तो पटु के उकार को यणादेश प्राप्त हो । उपधात्व में—पारिखीयः । यहां परिखा शब्द से चातुरर्थिक तदस्मिन्० ४ । २ । ६७ इत्यादि अर्थों में अण् किये पीछे जो आकार लोप ६ । ४ । १४८ हुआ है यदि वह स्थानिवत् हो तो छोपध न रहने से ४ । २ । १४१ सूत्र से भवार्थक छ प्रत्यय न हो ॥ ५७ ॥

७३—द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो अजादेश स्थानिवत् हो द्विर्वचन ही कर्त्तव्य हो तो । आकारलोप, उपधालोप, णिलोप, यण्, अय्, अव्, आय्, आव् आदेश इस सूत्र के प्रयोजन हैं । आल्लोप—पपतुः । यहां आकारलोप ६ । ४ । ६४ किये पीछे इस के स्थानिवत् होने से एकाच्त्व हुए पीछे द्विर्वचन होता है । उपधालोप—जघ्नतुः । यहां उपधालोप ६ । ४ । ९८ के स्थानिवत्व से द्विर्वचन होता है । णिलोप—आटिटत् । आट+अट्+णिच्+चङ्

स्वरे—चिकीर्षकः । सवर्णे-शिशिढ । अनुस्वारे-शिंषन्ति । दीर्घे प्रतिदीव्ने । जशि—सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे । चर्त्वान्ते इरी धानाः । जक्षतुः । जक्षुः । अक्षन्नमीमदन्त पितरः ॥५७॥

वा०-स्वरदीर्घयलोपविधिषु लोपाजादेशो न स्थानिवत् । चिकीर्षकः ... यौवन्य आदेशः स्थानिवद्वा भवति । पञ्चारत्न्यः । गिर्य्योः । स्थानिवत्त्वात् स्वरो भवति दीर्घयलोपौ न भवतः ॥

क्विलुगुपधात्वचङ्परनिर्ह्रासकुत्वेषूपसंख्यानम् । क्वौ विधिं प्रति ... वत्-लवमाचष्टे लवयति । ततः क्विप् । क्विलोपणिलोपौ । ऊठ् च । लौः

के प्रथम पुरुष द्विवचन में अप् को श्लु द्विर्वचन ६ । १ । १० उपधालोप ६ ... सलोप ८ । २ । २६ और चर्त्व ८ । २ । ४० हुआ । अब उपधालोप ... हो तो भ् को जश्त्व ८ । ४ । ५२ न हो चर्त्वविषय में—जक्षतुः । जक्षुः । लिट् के प्रथम पुरुष द्विवचन और बहुवचन में अद् को घस्लृ आदेश ... द्विर्वचन अभ्यासकार्य और शासिवसि० ८ । ३ । ६० से षत्व हुआ । अब धालोप को स्थानिवद्भाव हो तो खरि च ८ । ४ । ५४ से चर् न हो । यहां अद् धातु से लुङ् प्रथम बहुवचन में अद् को घस्लृ आदेश मंत्रेघस० २ । ४ । सूत्र से च्लिलुक् और गमहन० ६ । ४ । ९८ सूत्र से उपधालोप हुआ । ... पधालोप को स्थानिवद्भाव हो तो घ को चर् क नहीं ॥

वा०-स्वर दीर्घ यलोप विधियों में लोपरूप जो अजादेश वह स्थानि... नहीं । चिकीर्षकः । जिह्रीर्षकः । यहां चिकीर्ष और जिह्रीर्ष सन्नन्त के ... तुओं से कर्त्ता में ण्वुल् ३ । १ । १३३ सूत्र से हुआ पीछे ६ । ४ । ४८ से लोप हुआ यह लोपरूप अजादेश लिति स्वर करने में स्थानिवत् नहीं अतएव प्रत्यय से पूर्व ही को उदात्त होता है—तथा जो और अजादेश स्थानिवत् ही होता है । पञ्चारत्न्यः । यहां इगन्त ६ । २ । २९ सूत्र से को आद्युदात्त स्थानिवद्भाव होने से होता है । गिर्य्योः । यहां ... भाव होने से ८ । २ । ७७ से दीर्घ न हुआ । वाय्वोः । यहां अजादेश ... वत् होने से ६ । १ । ६६ यलोप नहीं होता ॥

क्वि, लुक्, उपधात्व, चङ्परनिर्ह्रास और कुत्व इन विषयों में स्थानिवत् नहीं होता यह उपसंख्यान करना चाहिये । क्विप् प्रत्यय के विधि उस के प्रति अजादेश स्थानिवत् नहीं होता है—लवमाचष्टे लवयति । तत्करोति तदाचष्टे इस से णिच् किये पीछे क्विप् हुआ

त्र णिलोपस्य स्थानिवत्त्वे ऊठ् न स्यात् । लुकि-पञ्चभिः पट्वीभिः क्रीतः पञ्चपटुः । आर्हादिति ठक् तस्याध्यर्धपूर्वेति लुक् । लुक्तद्धितलुकीति ङीपो लुक् । अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग् बाधत इति यणादेशः पूर्वं न प्रवर्तते कृते तु लुकि तस्य स्थानिवत्त्वाद्यणः प्रसंग इति स्थानिवद्भावनिषेध उच्यते । उपधात्वे पारिखीयः । अत्र परिखाशब्दात्चातुरर्थिकेऽणि कृते आकारलोपस्य स्थानिवत्त्वात् पारिखे भव इति वृद्धाद्‌केकान्तखोपधादिति छो न स्यात् ॥ ५७ ॥

७३-द्विर्वचनेऽचि ॥ ५८ ॥

प०-द्विर्वचने ७।१ अचि ७।१ अनु०-आदेश । अचः । स्थानिवत् । स्थानिदेशोऽयम् । स०-द्विर्वचनं च द्विर्वचनश्च द्विर्वचनं तस्मिन् । नपुंसकस्यैकशेष एकत्वं १।२।६९ च ।

सूभा०-द्विर्वचननिमित्तेऽच्यजादेशः स्थानिवद् भवति द्विर्वचन एव कर्त्तव्ये । आल्लोपोपधालोपणिलोपयणयवायावादेशाः प्रयोजनम् । आल्लोपे--पपतुः । अत्र-आतो लोप इत्याकारलोपे कृते तस्य स्थानिवत्त्वेनैकाच्त्वाद् द्विर्वचनं भवति । उपधालोपे-जघ्नतुः । गमहनेति उपधालोपे कृते तस्य स्थानिवत्त्वाद् द्विर्वचनं भवति । णिलोपे-आटिटत् । अत्र णिचि लुङि चङि णिलोपे कृते तस्य स्था-

क्रप् । इस अवस्था में (दाधिष्ठवाकार्यम्) यह प्रथम अतिदेश किये पीछे हलोप और णिलोप हुआ । यहां णिलोप को स्थानिवद्भाव होने पर भी पूर्व को ऊठ् न हो । लुग्विषय में-पञ्चभिः पट्वीभिः क्रीतः । यहां पञ्चन्+भिस्+पटु+ङीप्+ठञ् । इस अवस्था में क्रीतार्थ ठञ् ५ । १ । ३७ प्रत्यय का लुक् ५ । १ । २८ हुए पीछे जो ङीप् का लुक् १।२।४९ हुआ है यदि वह स्थानिवत् हो तो पटु के उकार को यणादेश प्राप्त हो । उपधात्व में-पारिखीयः । यहां परिखा शब्द से चातुरर्थिक तदस्मिन्न० ४ । २ । ६७ इत्यादि अर्थों में अण् किये पीछे जो आकार लोप ६ । ४ । १४८ हुआ है यदि वह स्थानिवत् हो तो खोपध न रहने से ४ । २ । १४१ सूत्र से भवार्थक छ प्रत्यय न हो ॥ ५७ ॥

७३-द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो अजादेश स्थानिवत् होवे द्विर्वचनही कर्त्तव्य हो तो । आकारलोप, उपधालोप, णिलोप, यण्, अय्, अव्, आय्, आव् आदेश इस सूत्र के प्रयोजन हैं । आल्लोप-पपतुः । यहां आकारलोप ६ । ४ । ६४ किये पीछे इस के स्थानिवत् होने से एकाच् हुए पीछे द्वित्वादि होता है । उपधालोप-जघ्नतुः । यहां उपधालोप ६ । ४ । ९८ के स्थानिवत्व से द्विर्वचन होता है । णिलोप—आटिटत् । आ+अट्+णिच्+चङ्+

पदा०—प्रत्ययलोपे=प्रत्ययस्य लोपे । प्रत्ययलक्षणम्=प्रत्ययस्य लक्षणं

सूभा० – प्रत्ययलोपे प्रत्ययाश्रितं कार्यं भवति । अग्निचित् । अत्र ... क्विप्लोपेऽपि तदाश्रिता पदसंज्ञा भवति ।

स्थानिवत्सूत्रेण सिद्धे नियमार्थमिदम् । प्रत्ययलक्षणमेव भवति नतु ... लक्षणं तेन सुदृषद्ब्राह्मणः-इत्यादौ अन्तस्यावयवस्येति शब्दलक्षणो दीर्घो न ... त्ययग्रहणं किम्-कृत्स्नस्य प्रत्ययस्य लोपे प्रत्ययलक्षणं यथा स्यात् । ... मा भूत् । आघ्नीय । सङ्ग्मीय । हनिगम्योर्लिङ्यात्मनेपदे लिङः ... स्येति सीयुट्सकारस्य प्रत्ययैकदेशस्य लोपस्तत्र प्रत्ययलक्षणेन झलीत्यनु... सिलोपो न ॥ अथ द्वितीय प्रत्ययग्रहणं किमर्थम्-प्रत्ययलक्षणं यथा स्यात् ... लक्षणं मा भूत् । रायः कुलं रैकुलम् । गवे हितं गोहितम्-इति भाष्यम् ।

प०-वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् । गोहितम् । इत्यादि ॥ ६१ ॥

७७-न लुमताऽङ्गस्य ॥ ६२ ॥

स्थानिवदा० १ । १ । ५६ सूत्र से स्थानिवद्भाव मान प्रत्ययाश्रित कार्य हो सकने पर "प्रत्ययलोपे०" जो सूत्र कहा सो नियमार्थ है अर्थात्-प्र... होने पर प्रत्ययलक्षण ही हो किन्तु शब्दलक्षण न हो इस से-... यहां सुदृषद् शब्द से परे समासमें सु का लोप हुए पीछे समासान्तर्वर्तिनी भक्तिका स्थानिवद्भाव होकर परे मान (अत्वसन्त० ६ । ४ । १४) शब्दल... कार्य नहीं होता है ॥ प्रत्ययग्रहण सूत्र में क्योंकिया-पूरे प्रत्यय के लोप हो पर प्रत्ययलक्षण कार्य जैसे हो एकदेशलोप में न हो । आघ्नीय । सङ्ग्मीय इन में "हन गम्लृ" इन दोनों धातुओं से आत्मनेपद विधिलिङ् में उत्तम पुरुष एक वचन के परे (लिङ. ३ । ४ । ७९) सीयुट् के एकदेश स का लोप हुए पीछे प्रत्ययलक्षण से (अनुदा० ६ । ४ । ३७) से झल् प्रत्यादारादि ङित् परे म... अनुनासिक लोप नहीं होता है ॥

भाष्यकार कहते हैं कि-दूसरा प्रत्ययग्रहण क्यों किया प्रत्ययलक्षण जैसे वर्णलक्षण न हो । रायः कुलं । रैकुलम् । गवे हितं गोहितम् । इन में समासान्तर्वर्तिनी विभक्ति का लोप हुए पीछे वर्णाश्रय आय् अव् आदेश नहीं होते हैं ।

पा०-वर्णाश्रय में प्रत्ययलक्षण नहीं होता है जैसे-गोहितम् । यहां प्रत्ययलक्षण मान गो शब्द के ओकार को अवादेश समासान्तर्वर्तिनी के विभक्ति के आश्रय से नहीं होता है ॥ ६१ ॥

प०—न । लुमता ३ । १ अङ्गस्य ६ । १ अनु०—प्रत्ययलोपे । प्रत्ययलक्षणम् ।
पदा०—लुमता=लुविंधतेऽस्मिन्नसौ लुमांस्तेन ।
सूभा०—लुमता प्रत्ययलोपे यदङ्गं तस्य प्रत्ययलक्षणं कार्यं तन्न भवति ।
गर्गाः । मृष्टः । जुहुतः । एषु यञ्शपोर्लुमता लुक्श्लोरङ्गस्य वृद्धिगुणौ न भवतः ।
लुमतेति किम्—कार्यते । अङ्गस्येति किम्—पञ्च । सप्त । अत्र जस्शसोर्लुकि कृ-
ते पदसंज्ञायां कृतायां नलोपः ॥
वा०—उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ । परमवाचा । परमवाचे । अपदादिविधा-
विति किम्—दधिसेचौ । दधिसेचः ।
प०—प्रतिषेधाश्च बलीयांसो भवन्ति । स्यन्त्स्यति ॥ ६२ ॥

६२—लुमान् शब्द से प्रत्यय का लोप होनेपर जो अङ्ग उस का जो प्रत्य-
यलक्षण कार्य वह नहीं होता है । गर्गाः । मृष्टः । जुहुतः । इन में लुमान् लुक्
। शब्दों से यञ् और शप् का लुक् (२ । ४ । ६४ ॥ २ । ४ । ७२) से तथा
(२ । ४ । ७५) से किये पीछे प्रत्ययलक्षण अङ्ग को वृद्धि और गुण नहीं होते
। लुमतायहण क्यों किया—कार्यते । यहां णिजन्त कृधातु से कर्म में यक् किये
पीछे (६ । ४ । ५१) से णिच् लोप होने पर भी वृद्धि होती है । अङ्गस्य ग्रहण
क्यों किया—पञ्च । सप्त । इन में जस् और शस् का लुक् (७ । १ । २२) से
हुए पीछे (८ । २ । ७) से प्रातिपदिकान्त न का लोप होता है ।
वा०—पदादिविधि को छोड़ उत्तरपद को पदस्थपदेश कार्य करना हो और
लुमान् शब्द से प्रत्यय का लोप हो तो प्रत्ययलक्षण न हो । परमवाचा । प-
रमवाचे । यहां समासान्तर्वर्त्तिनी विभक्ति का आश्रय कर (चोः कुः ८।२।३०)
कुत्व प्राप्त है वह प्रत्ययलक्षण के न होने से नहीं होता है । अपदादिवि-
धिग्रहण क्यों किया—दधिसेचौ । दधिसेचः । यहां सिच् धातु के सकार को मूर्द्धन्य
(८।३।६५) प्राप्त है उस का निषेध सात्पदाद्योः सूत्र से हो जाता है षकार
का निषेध पदादिविधि है इस में प्रत्ययलक्षण कार्य का निषेध नहीं होता इस
से प्रत्ययलक्षण मान समासान्तर्वर्त्तिनी विभक्ति से दधि सेच् दोनों की पदसंज्ञा है ।
प०—पर नित्य और अन्तरङ्ग से भी प्रतिषेध बलवान् होते हैं । स्यन्त्स्यति ।
यहां स्यन्दू धातु से लृट् लकार में (स्वरति० ७ । २ । ४४) सूत्र से विकल्प करि इट् प्राप्त
और (न वृद्भ्यः० ७।२।५९) सूत्र से परस्मैपद में इट् निषेध प्राप्त है इन में से
इट्विकल्प अन्तरङ्ग और इट्निषेध बहिरङ्ग है जो अन्तरङ्ग कार्य करने में बहिरङ्ग
असिद्ध माना जाय तो परस्मैपद में भी इट्विकल्प होना चाहिये परन्तु प्रतिषेध
बलवान् होने से इट्विकल्प को बाध कर निषेध होजाता है ॥ ६२ ॥

प०–भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न । ज्यायान् । सः ॥ ६८ ॥

८४–तपरस्तत्कालस्य ॥६९॥

प०–तपरः १ । १ तत्कालस्य ६ । १ अनु० स्वम् ।

पदा०–तपरः=तः परो यस्मात्स तात्परोऽथवा तत्कालस्य=स एव तस्येति । संज्ञासूत्रम् ।

सूत्रा०—तपरः स्वसमानकालवर्णस्य संज्ञा भवति स्वस्य च स्वरूपम् । इत् । उत् । इति षण्णां षण्णां संज्ञा । लृदिति द्वादशानाम् पुत्रैः । तत्कालस्येति किम्–खट्वाभिः । मालाभिः ॥ ६९ ॥

ध्वनिस्फोटस्तुशब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते ।
महानल्पश्च केषाञ्चि–दुभयं तत्स्वभावतः ॥ १ ॥

८५–आदिरन्त्येन सहेता ॥७०॥

प०–आदिः १ । १ अन्त्येन ३ । १ सह अ० । इता ३ । १ ।

पदा०–अन्त्येन=अन्त्ये भवो वर्णोऽन्त्यस्तेन । सह=सहार्थे । संज्ञासूत्रम् ।

सूत्रा०–अन्त्येनेत्संज्ञकेन सहोच्चार्यमाण आदिर्मध्यपतितानां स्वस्य च संज्ञा भवति । अण् । अक् । हल् । सुप् । तिङ् । इत्यादि । अन्त्येनेति किम् ...हाटकारेण मा भूत् ॥७०॥

...ही करने से सवर्णग्रहण से दीर्घ का ग्रहण हो जाता । । पर ... सवर्ण का ग्रहण न होना जताने के लिये आकार कहा है । सः ... ७ । २ । १०२ से अकारविधान किया सो आकार नहीं होता है ॥ ६८ ॥

८४–तपर अपने समान वर्णों की और अपनी संज्ञा होता है । ... अत् । इत् । उत् । ये एकमात्रिक छः २ व्यक्तियों की संज्ञा हैं जैसे उदात्त । ह्रस्व अनुदात्त । ह्रस्वस्वरित । ह्रस्व उदात्तअनुनासिक । ह्रस्व अनुनासिक । ह्रस्वस्वरित अनुनासिक । ऐसे ही दीर्घ प्लुत के भी छः हैं । अतएव एक २ के अठारह २ भेद कहे जाते हैं । लृत् यह ... संज्ञा है लृ दीर्घ नहीं है इस से छः भेद न्यून हैं । पुत्रैः । अतो ... सू० (७ । १ । ९) से अकार से परे भिस् को ऐस् होता है, ...भिः । मालाभिः । यहां आकार से परे नहीं होता है ॥ ६९ ॥

८५–अन्त्य इत्संज्ञक के साथ उच्चारण किया जाता जो आदिवर्ण वह ... के वर्णों की और अपनी संज्ञा होता है । जैसे अ इ उ ण् । सूत्र में "अण्"

ोताः । सुशर्मा । सुमथिमा ॥ यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे ८७॥ धियः । भुवः ॥

८७–वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥७३॥

प०–वृद्धिः १ । १ यस्य ६ । १ अचाम् ६ । ३ आदिः १ । १ तत् १ । १ ...म् १ । १ अनु०–रूपम् ॥ संज्ञासूत्रम् ॥

पदा०–यस्य=व्यपदेशाय । रूपम्=रूपस्य ॥

सूत्रा०–यस्य रूपस्याचांमध्यआदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं भवति । शालीयः । ...लीयः । गार्गीयाः । वात्सीयाः । आदिरिति किम्–सभासन्नयने भवः साभा-...नयनः ॥

...न्त को दीर्घ (इक० ६ । ४ । १३) होता है । ऐसे ही यानी । यहां मिनु... अनर्थक एकदेश इन् को भी दीर्घ होता है । सुपथाः । यहां अतुन् । न्धान्त से ...सन्त को दीर्घ (अत्व० ६ । ४ । १४) से होता है जैसे सुस्रोताः । यहां भी स्रातस् ...अनर्थ एकदेश अस् को लेकर दीर्घादेश होता है । सुशर्मा । यहां मनेवान् ...न्त से डीप् का निषेध होता जैसे सुमथिमा । यहां इमनिच् के अनर्थक ...न् को लेकर मकरन्त सुमथिमन् शब्द से डीप् का निषेध होता है ॥

७–अल्ग्रहण शास्त्र में जिस अल् के परे विधि कहा हो वह जिस के आदि ...में हो उस के परे विधि जानना चाहिये । धियः । भुवः । यहां अजादि प्रत्यय ...रे मानि ६ । ४ । ७७ से इयङ् उवङ् होते हैं ॥

८७–जिस रूप के अचों में आदि अच् वृद्धि संज्ञक हो वह वृद्ध संज्ञक होता है । ...शालीयः । इत्यादि में वृद्ध संज्ञा होने से (४ । २ । ११४) से छ प्रत्यय होता ...है । आदि ग्रहण क्यों किया—साभासन्नयनः । यहां आद्यच् वृद्धि न होने से ...वृद्ध संज्ञा नहीं होती है इस से छ प्रत्यय नहीं होता अण् होजाता है ॥

वा०–नामधारक की वृद्धसंज्ञा विकल्प से कहनी चाहिये । देवदत्तीयाः । ...देवदत्ताः । यहां पाक्षिक वृद्ध संज्ञा होने से वृद्ध संज्ञा प्रयुक्त छ प्रत्यय विकल्प ...से होता है दूसरे पक्ष में इद्यर्थ अण् प्रत्यय होजाता है ॥

वा०–गोत्रान्त से असमस्त का प्रत्यय अर्थात् जो बिना समास के प्रत्यय ...होता हो वह होता है यह कहना चाहिये । औदमघाविनीयाः । घृतरौढीयाः । ...इन में बिना समास पाणिनि रौढि इन की आदि वृद्धि को देख वृद्ध संज्ञा ...होने से जो छ प्रत्यय प्राप्त है वह समास में भी होता है ॥

९७–रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥८॥

प०–रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः ५ । १ सन् १ । १ च अ० ॥ अनु० क्त्वा ॥

सू०–रुदादिभ्यः परः क्त्वा सँश्च किद्भवति । रुदविदमुषाणां ग्रहणं रलोव्युपधादिति विकल्पे प्राप्ते । ग्रहेर्नित्यार्थम् । स्वपिप्रच्छ्योस्सन्नर्थं च । रुदित्वा । रुरुदिषति । विदित्वा । विविदिषति । मुषित्वा । मुमुषिषति । गृहीत्वा । जिघृक्षति । सुप्त्वा । सुषुप्सति । पृष्ट्वा । पिपृच्छिषति । ग्रहादीनां कित्वात् संप्रसारणं किरश्चेति सन्येवेडागमश्च ॥८॥

९८–इको झल् ॥९॥

प०–इकः ५ । १ झल् १ । १ अनु०–सन् । कित् ॥

सू०–इगन्तात् परो झलादिस्सन् किद्भवति । चिचीषति । तुष्टूषति । चिकीर्षति । इक इति किम्–पिपासति । झलिति किम्–शिशयिषते । निधित्सति किस्ते दीर्घे परत्वाद्गुणो बाधते शीप्सतीत्यादौ णिलोपवत् ॥

प०–पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः । बुभूषति । सत्यपि दीर्घे–अज्झनगमां सनीति भवत्येव ॥

९७–रुद, विद, मुष, ग्रहि, स्वपि, प्रच्छ इन से परे क्त्वा और सन् कित्वत् होते हैं । रलोव्युप० १ । २ । २६ सूत्रसे वैकल्पिक कित्व प्राप्त होनेसे रुद विद मुष इन धातुओं का ग्रहण है । ग्रहधातु का नित्यार्थ ग्रहण है । स्वपि और प्रच्छि का सन् के अर्थ ग्रहण है । विदित्वा इत्यादि प्रयोगों में क्त्वा और सन् को कित्व होने से गुण का निषेध और स्वपि प्रच्छ को संप्रसारण होजाता है । पिपृच्छिषति । यहां (७ । २ । ७५) इट् होता है ॥

९८–इगन्त से परे झलादि सन् कित्वत् होता है । चिचीषति । चिकीर्षति इत्यादि में सन् को कित्व होने से गुण निषेध (१ । १ । ५) दीर्घ (६ । ४ । १६) इर (७ । १ । १००) और (८ । २ । ७७) उपधादीर्घ होजाता है इक् ग्रहण क्यों किया–पिपासति । यहां इगन्त न होने से सन् को कित्व नहीं होता अतएव पा धातु को इकारादेश (६ । ४ । ६६) से नहीं होता है ॥

ग्रहण क्यों किया–शिशयिषते । यहां इडादि सन् कित् नहीं होता है ।

का आरम्भ क्यों किया–क्यों कि–जहां २ गुण निषेध करना है

दीर्घारम्भ सामर्थ्य से गुण न होगा उत्तर–कित् विधान

दीर्घ को परत्व से गुण बाध लेगा जैसे । शीप्सति । इत्यादि

बाधता है ।

इकः किस्त्वं गुणो मा भूद्-दीर्घारम्भात्कृते भवेत् । अनर्थकं तु ह्रस्वार्थं दीर्घाणां तु प्रसज्यते ॥ १ ॥ सामर्थ्याद्धि पुनर्भाव्यमृदित्त्वं दीर्घसंश्रयम् । दीर्घाणां नाकृते दीर्घे णिलोपस्तु प्रयोजनम् ॥ २ ॥ भाष्येकारिके इमे ॥ ९ ॥

९९—हलन्ताच्च ॥ १० ॥

प०—हलन्तात् ५ । १ च । अनु० इकः । झल् । सन् ॥

पदा०—हलन्तात्=हल् यस्य अन्तश्च तस्मात् । समीपवचनोऽन्तशब्दः ॥

सूत्रा०—इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् किद्वद्भवति । धिप्सति । धीप्सति । इकः किम्-यियक्षति । झल्किम्-विवर्द्धिषते ।

भा०—इग्भेदे हल्ग्रहणस्य जातिवाचकत्वात्सिद्धम् । धिप्सति । धीप्सति । इति भाष्यम् ॥

१००—लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥ ११ ॥

प०—लिङ्सिचौ १।२ आत्मनेपदेषु ७।३ अनु० कित् । इकः । झल् । हलन्तात् ॥

पदा०—लिङ्सिचौ=लिङ् च सिच् तौ । कित्=कितौ ॥

प०—पर्जन्यवत् (मेघ के समान) लक्षण प्रवृत्ति होती है जैसे मेघ जल, स्थल में सर्वत्र बरसता है वैसे ही सूत्र की प्रवृत्ति आवश्यक निरावश्यक सर्वत्र होती है अतएव । तुभूषति । यहां भू धातु के दीर्घ होने पर भी दीर्घ होता है ॥९॥

९९—इक् समीपवर्त्ती हल् से परे झलादि सन् कित् वत् होता है धिप्सति । इत्यादि में सन् को कित्व होने से गुण नहीं होता है । इक् ग्रहण क्यों किया—यियक्षति । यहां कित् न होने से यज को संप्रसारण (६ । १ । १५) से नहीं होता । झल् ग्रहण क्यों किया—विवर्द्धिषते । यहां अजादि सन् के कित् न होने से वृधधातु को गुणादेश होता है ॥

भा०—यहां हल् ग्रहण को जातिवाचकत्व मानि के दम्भ धातु से परे सन् को कित्व होने से । धिप्सति । इत्यादि में अनुनासिक लोप हो जाता है ॥१०॥

१००—इक् समीपवर्त्ती हल् से परे झलादि लिङ् और सिच् कित् वत् विकल्प करके होते हैं आत्मनेपद विषय में । भित्सीष्ट । इत्यादि में कित् होने से गुण नहीं होता । इक् ग्रहण क्यों किया—यक्षीष्ट । अयष्ट । यहां कित्व न होने से संप्रसारण

९७—रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥८॥

प०—रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः ५ । १ सन् १ । १ च अ० ॥ अनु० क्त्वा । कि[illegible]

सू०—रुदादिभ्यः परः क्त्वा सँश्च किद्वद्भवति । रुदविदमुषाणां ग्रहणं रलोव्युपधादिति विकल्पे प्राप्ते । ग्रहेर्विध्यर्थम् । स्वपिप्रच्छ्योस्सन्नर्थं च । रु[illegible] रुरुदिषति । विदित्वा । विविदिषति । मुषित्वा । मुमुषिषति । गृहीत्वा । जि[illegible] सुप्त्वा । सुषुप्सति । पृष्ट्वा । पिपृच्छिषति । ग्रहादीनां कित्वात् संप्रसारण[illegible] किरश्चेति प्रच्छेरिडागमश्च ॥८॥

९८—इको झल् ॥९॥

प०—इकः ५ । १ झल् १ । १ अनु०-सन् । कित् ॥

सू०—इगन्तात् परो झलादिस्सन् किद्वद्भवति । चिचीषति । तुष्टूषति । [illegible]षति । इक इति किम्—पिपासति । झलिति किम्—शिशयिषते । किमर्थमिदमारभ्यते । असति कित्वे दीर्घं परत्वाद्गुणो बाधते शीप्सतीत्यादौ णिलोपवत् ॥

प०—पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः । बुभूषति । सत्यपि दीर्घे [illegible] भवत्येव ॥

९७—रुद, विद, मुष, ग्रहि, स्वपि, प्रच्छ इन से परे क्त्वा और सन् [illegible] होते हैं । रलोव्युपधा० १ । २ । २६ सूत्रसे वैकल्पिक कित्व प्राप्त होनेसे रुद विद [illegible] इन धातुओं का ग्रहण है । ग्रहधातु का विध्यर्थ ग्रहण है । स्वपि और [illegible] का सन् के अर्थ ग्रहण है । विदित्वा इत्यादि प्रयोगों में क्त्वा और सन् कित्व होने से गुण का निषेध और स्वपि प्रच्छ को संप्रसारण हो जाता है पिपृच्छिषति । यहां (७ । २ । ७५) इट् होता है ॥

९८—इगन्त से परे झलादि सन् कित्वत् होता है । चिचीषति । चि[illegible] इत्यादि में सन् को कित्व होने से गुण निषेध (१ । १ । ५) दीर्घ (६ । ४ । [illegible]) इट् (७ । १ । १००) और (८ । २ । ७७) से उपधा दीर्घ हो जाता है इक् ग्रहण [illegible] किया—पिपासति । यहां इगन्त न होने से सन् को कित्व नहीं होता अतएव पा धा[illegible] को इकारादेश (६ । ४ । ६६) भी नहीं होता है ॥

झल् ग्रहण क्यों किया—शिशयिषते । यहां इडादि सन् कित् नहीं होता है । इस झल् सूत्र का आरम्भ क्यों किया—क्यों कि—यहां [illegible] गुण निषेध करता है यहां दीर्घ [illegible] [illegible] कित् [illegible] न किया जावे तो दीर्घ को [illegible] गुण बाध लेगा [illegible] । [illegible] । इत्यादि में दीर्घ को [illegible] है ।

प०-हनः ५ । १ सिच् १ । १ अनु०-कित् । आत्मनेपदेषु ॥

सू०-आत्मनेपदेषु हनः परः सिच्किद्भवति । आहत । आहसाताम् । आहसत । सिज्ग्रहणं लिङ्निवृत्त्यर्थमुत्तरम सिजेवानुवर्त्तेतेति । आत्मनेपदग्रहण मुत्तरार्थमनुवर्त्तते । इह परस्मैपदे वधादेशो नित्यः ॥ १४ ॥

१०४–यमो गन्धने ॥१५॥

प०-यमः ५ । १ गन्धने ७ । १ अनु०-कित् । सिच् । आत्मनेपदेषु ॥

पदा०-गन्धने=गन्ध्यते सूच्यतेऽनेन वस्तगन्धअर्दनेइत्यस्मात् करणे ल्युट् ३ । ३ । ११७) गन्धनमत्र सूचनं परावयस्याविष्करणम् । धातूनामनेकार्थत्वात्तत्र मिर्वर्त्तते ॥

सूत्रा०-गन्धनेऽर्थे वर्त्तमानाद् यमः परः सिच् किद्भवति । उदायत । उदायसाताम् । उदायसत । सिचः कित्वादनुनासिकलोपः । आङो यमहनइत्यात्मनेपदम् । गन्धनइति किम्-उदायंस्त पादम् । सकर्मकत्वेऽपि समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थइत्यात्मनेपदमिति ॥

१०५–विभाषोपयमने ॥१६॥

प०-विभाषा १ । १ उपयमने ७ । १ अनु०-यमः । सिच् । कित् । आत्मनेपदेषु ॥

हत । आहसाताम् । आहसत । यहां सिच् को कित् मान के अनुनासिकलोप ६ । ४ । ३७ से हो जाता है । लिङ् सिच् की अनुवृत्ति आती थी असएव लिङ् की निवृत्ति के लिये फिर सिच् का ग्रहण किया कि जिस से अगले सूत्रों में सिच् की ही अनुवृत्ति हो । आत्मनेपद की अनुवृत्ति भी आगे के लिये है इस हन् धातु को परस्मैपद में वध आदेश नित्य होता है इस से यहां किद् का प्रयोजन नहीं है ॥ १४ ॥

१०४-गन्धन (दूसरे के दोष कहने) अर्थ में वर्त्तमान यम् धातु से परे सिच् कित् होता है आत्मनेपद विषय में । उदायत । इत्यादि में कित्वमानि के अनुनासिक लोप (६ । ४ । ३७) होता है । आत्मनेपद (१ । ३ । २८) से होता है । गन्धन ग्रहण क्यों किया-उदायंस्त पादम् । इत्यादि में कित्व न होने से अनुनासिक लोप नहीं होता है । आङो यमहनः । सूत्र में अकर्मक यम धातु से आत्मनेपद कहा है परन्तु यम धातु से सकर्मकपक्ष में भी (समु० १ । ३ । ७५) सूत्र आत्मनेपद होता है ॥ १५ ॥

१०५-उपयमन अर्थ में वर्त्तमान यम धातु से परे सिच् विकल्प करके कित्

सूत्रा०-इकसमीपाद्धल परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ भवतआत्मनेपदे; भित्सीष्ट । भुत्सीष्ट । अभित्त । अबुद्ध । इकः किम्-यक्षीष्ट । अयष्ट । किम्-अस्राक्षीत् । हलः किम्-चेषीष्ट । अचेष्ट । झल् किम्-वर्तिषीष्ट । लिङ्सिचाविति किम्-द्वेष्टा । द्वेक्ष्यति ॥ ११ ॥

१०१-उश्च ॥ १२ ॥

प०-उः ५ । १ च, । अनु०-लिङ्सिचौ । झल् । कित् ॥

सू०-ऋवर्णान्तात्परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ भवत आत्मनेपदे; कृषीष्ट । अकृत । झल्किम्-वरिषीष्ट । अवरिष्ट । आत्मनेपदेषु किम्-अकार्षीत् ।

१०२-वा गमः ॥ १३ ॥

प०-वा अ० । गमः ५ । १ अनु०-लिङ्सिचौ । झल् । कित् । आत्मनेपदे ।

सूत्रा०-गमः परौ झलादीलिङ्सिचौ कितौ वा भवत आत्मनेपदेषु । संसीष्ट । संगंसीष्ट । समगत । समगंस्त ॥ १३ ॥

१०३-हनः सिच् ॥१४॥

न हुआ । आत्मने पद ग्रहण क्यों किया-अस्राक्षीत् । यहां अकित् ... परे मृज् को अमागम (६ । १ । ५८) से होता है । हल् ग्रहण क्यों किया-चेषी; अचेष्ट । यहां कित्व न होने से गुणादेश होता है । झल् ग्रहण क्यों किया-व र्तिषीष्ट । अवर्त्तिष्ट । यहां भी कित्व न होने से गुणादेश होता है । लिङ् सि ग्रहण क्यों किया-द्वेष्टा । द्वेक्ष्यति । यहां लुट् लृट् को कित्व न होने से इ को गुणादेश होता है ॥ ११ ॥

१०१-ऋवर्णान्त से परे झलादि लिङ् सिच् कित्वत् होते हैं आत्मनेपद विषय में । कृषीष्ट । अकृत । यहां कित्व होने से गुण नहीं होता । झल् ग्रहण क्यों किया-वरिषीष्ट । अवरिष्ट । यहां कित्व न होने से गुण होता है । आत्मनेपद ग्रहण क्यों किया-अकार्षीत् । यहां सिच् को कित्व न होने से ऋ को वृद्धि (७ । २ । १) से होती है ॥ १२ ॥

१०२-गम् से परे लिङ् सिच् कित् वत् विकल्प कर के होते हैं आत्मनेपद विषय में । संगसीष्ट । संगंसीष्ट । समगत । समगंस्त । पक्ष में कित्व पक्ष में अनुनासिक लोप (६ । ४ । ३७) से हो जाता है ॥ १३ ॥

१०३ आत्मनेपद विषय में हन् धातु से परे सिच् कित् वत् ... जाता है ।

प०-हनः ५ । १ सिच् १ । १ अनु०-कित् । आत्मनेपदेषु ॥

स०-आत्मनेपदेषु हनः परः सिच् किद्वद्भवति । आहत । आहसाताम् ।
आहसत । सिज्ग्रहणं लिङ्निवृत्त्यर्थमुत्तरत्र सिजेवानुवर्त्तेतेति । आत्मनेपदग्रहण
उत्तरार्थमनुवर्त्तते । इह परस्मैपदे वधादेशो नित्यः ॥ १४ ॥

१०४-यमो गन्धने ॥१५॥

प०-यमः ५ । १ गन्धने ७ । १ अनु०-कित् । सिच् । आत्मनेपदेषु ॥

पदा०-गन्धने=गन्ध्यते सूच्यतेऽनेन वस्तगन्धयर्दनेइत्यस्मात् करणे ल्युट्
(३ । ३ । ११७) गन्धनमत्र सूचनं परावद्यस्याविष्करणम् । धातूनामनेकार्थत्वात्तत्र
निर्वचनं ॥

सूत्रा०-गन्धनेऽर्थे वर्त्तमानाद् यमः परः सिच् किद्वद्भवति । उदायत । उदायसाताम् । उदायसत । सिचः कित्त्वादनुनासिकलोपः । आङ्गे यमहनइत्यात्मनेपदम् । गन्धनइति किम्-उदायंस्त पादम् । सकर्मकत्वेऽपि समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थइत्यात्मनेपदमिति ॥

१०५-विभाषोपयमने ॥१६॥

प०-विभाषा १ । १ उपयमने ७ । १ अनु०-यमः । सिच् । कित् । आत्मनेपदेषु ॥

त । आहसाताम् । आहसत । यहां सिच् को कित् मान के अनुनासिकलोप (६ । ४ । ३७ से हो जाता है । लिङ् सिच् की अनुवृत्ति आती थी अतएव लिङ् की निवृत्ति के लिये फिर सिच् का ग्रहण किया कि जिस से अगले सूत्रों में सिच् ही की अनुवृत्ति हो । आत्मनेपद की अनुवृत्ति भी आने के लिये है इस हन् धातु को परस्मैपद में वध आदेश नित्य होता है इस से यहां किद् का प्रयोजन नहीं है ॥ १४ ॥

१०४-गन्धन (दूसरे के दोष कहने) अर्थ में वर्त्तमान यम् धातु से परे सिच् कित् होता है आत्मनेपद विषय में । उदायत । इत्यादि में कित्त्वमानि के अनुनासिक लोप (६ । ४ । ३७) होता है । आत्मनेपद (१ । ३ । ८८) से होता है । गन्धन ग्रहण क्यों किया-उदायंस्त पादम् । इत्यादि में कित् न होने से अनुनासिक लोप नहीं होता है । आङोयमहन. । सूत्र से अकर्मक यम धातु से आत्मनेपद कहा है परन्तु यम धातु से सकर्मकपक्ष में भी (समुद० १ । ३ । ७५) सूत्र आत्मनेपद होता है ॥ १५ ॥

१०५-उपयमन अर्थ में वर्त्तमान यम धातु से परे सिच् विकल्प करके कित्

प०-हनः ५ । १ सिच् १ । १ अनु०-कित् । आत्मनेपदेषु ॥

सू०-आत्मनेपदेषु हनः परः सिच्किद्भवति । आहत । आहसाताम् । आहसत । सिज्ग्रहणं लिङ्निवृत्त्यर्थमुत्तरत्र सिजेवानुवर्त्ततेति । आत्मनेपदग्रहणमुत्तरार्थमनुवर्त्तते । इह परस्मैपदे वधादेशो नित्यः ॥ १४ ॥

१०४–यमो गन्धने ॥१५॥

प०-यमः ५ । १ गन्धने ७ । १ अनु०-कित् । सिच् । आत्मनेपदेषु ॥

पदा०-गन्धनं=गन्ध्यते सूच्यतेऽनेन वस्तगन्धशब्दनेत्यस्मात् करणे ल्युट् (३ । ३ । ११७) गन्धनमत्र सूचनं परावद्यस्याविष्करणम् । धातूनामनेकार्थत्वात्तम विवक्षितं ॥

सूत्रा०-गन्धनेऽर्थे वर्त्तमानाद् यमः परः सिच् किद्भवति । उदायत । उदायसाताम् । उदायसत । सिचः कित्वादनुनासिकलोपः । आङो यमहनइत्यात्मनेपदम् । गन्धनइति किम्–उदायंस्त पादम् । सकर्मकत्वेऽपि समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थइत्यात्मनेपदमिति ॥

१०५–विभाषोपयमने ॥१६॥

प०-विभाषा १ । १ उपयमने ७ । १ अनु०-यमः । सिच् । कित् । आत्मनेपदेषु ॥

त । आहसाताम् । आहसत । यहां सिच् को कित् मान के अनुनासिकलोप ६ । ४ । ३७ से हो जाता है । लिङ् सिच् की अनुवृत्ति आती थी अतएव लिङ् की निवृत्ति के लिये फिर सिच् का ग्रहण किया कि जिस से अगले सूत्रों में सिच् ही की अनुवृत्ति हो । आत्मनेपद की अनुवृत्ति भी आगे के लिये है हन् धातु को परस्मैपद में वध आदेश नित्य होता है इस से यहां किद् का प्रयोजन नहीं है ॥ १४ ॥

१०४–गन्धन (दूसरे के दोष कहने) अर्थ में वर्त्तमान यम् धातु से परे सिच् कित् होता है आत्मनेपद विषय में । उदायत । इत्यादि में कित्वमानि के अनुनासिक लोप (६ । ४ । ३७) होता है । आत्मनेपद (१ । ३ । ७५) से होता है । गन्धन ग्रहण क्यों किया–उदायंस्त पादम् । इत्यादि में कित् न होने से अनुनासिक लोप नहीं होता है । आङो यमहनः । सूत्र में अकर्मक यम धातु से आत्मनेपद कहा है परन्तु यम धातु से सकर्मकपक्ष में भी (समु० १ । ३ । ७५) सूत्र से आत्मनेपद होता है ॥ १५ ॥

१०५–उपयमन अर्थ में वर्त्तमान यम धातु से परे सिच् विकल्प करके कित् होता है ।

इस्वंकित्संनियोगेन रेखांतुल्यंसुधीवनि ।
वरयर्थंकिद्तीदेशा—न्निगृहीतिःप्रयोजनम् ॥१८॥

१०८—निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥१९॥

-निष्ठा १ । १ शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ५ । १ अनु०-सेट् । कित् । न ॥
पदा०-शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः=शीङ् च स्विदिश्च मिदिश्च क्ष्विदिश्च धृट् च समाहारत्वात् ॥
सूत्रा०-शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः परस्सेण्निष्ठा किन्न भवति । शयितः । शयितवान् । प्रस्वेदितः । प्रस्वेदितवान् । मेदितः । मेदितवान् । क्ष्वेदितः । क्ष्वेदितवान् । प्रधर्षितः । प्रधर्षितवान् । सेट् किम्-स्विन्नः । स्विन्नवान् । शीङोऽनुबन्धनिर्देशो यङ्लुङ्निवृत्त्यर्थः । शेशयितः । शेशयितवान् । स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषादित्वाच्चेति निष्ठायामिट्प्रतिषेधो विभाषाभावादिकर्मणोरिति प्राप्तेऽयं सिद्धिप्रतिषेधः ॥१९ ॥

१०९—मृषस्तितिक्षायाम् ॥ २० ॥

प०-मृषः ५ । १ तितिक्षायाम् ७ । १ अनु०-सेट् । निष्ठा । कित् । न ॥
सूत्रा०-मृषः परस्सेण्निष्ठा किन्न भवति तितिक्षायाम् । तितिक्षा सहनम् । मर्षितः । मर्षितवान् । तितिक्षायां किम्-अपमृषितं वाक्यम् ॥ २० ॥

संप्रसारण (६।१।१६) और निकुचितिः । यहां कुञ्च के नकार का लोप (६।४।२४) होता है । सेट् ग्रहण इसलिये है कि कृत्वा । यहां गुण नहीं होता ॥ १७ ॥

१०८-शीङ् स्विदि, मिदि, क्ष्विदि, धृष इन धातुओं से परे सेट् निष्ठा कित् नहीं होता है । शयितः । शयितवान् । इत्यादि में कित् निषेध से गुणादेश होता है । सेट् ग्रहण क्यों किया-स्विन्नः । इत्यादि में कित् होने से गुणादेश न हुआ । शीङ् का अनुबन्ध के साथ निर्देश यङ्लुक् की निवृत्ति के लिये है । जैसा-शेशयितः । इत्यादि में सेट् निष्ठा भी कित् संज्ञक होता है स्विदादिकों को (अ० । ७ । २ । १६) इट् का प्रतिषेध होने पर वाधिक (७ । २ । १७) से इट् होने पर कित्व प्रतिषेध होता है ॥

१०९-मृष धातु से परे सेट् निष्ठा कित् नहीं होता है तितिक्षा अर्थ में । तितिक्षा सहने को कहते हैं । मर्षितः । मर्षितवान् । कित् का निषेध होने से गुण का निषेध न हुआ । तितिक्षा ग्रहण क्यों है-अपमृषितम् । यहां तितिक्षा अर्थ में कित्व निषेध नहीं होता है ॥ १०९ ॥

पदा०-उपयमने=उपयम्यते स्वीक्रियतेऽनेन तदुपयमनं वैवाहिक...

सूत्रा०-उपयमने वर्त्तमानाद् यमः परः सिच् विभाषा ...

रामस्सीतामुपायत । उपायंस्त वा । उपायमः स्वकरणइत्यात्मनेपदम् ॥ १६ ॥

१०६-स्थाघ्वोरिच्च ॥१७॥

प०-स्थाघ्वोः ६ । २ इत् १ । १ च । अनु०-सिच् । कित् । आत्मने...

पदा०-स्थाघ्वोः=स्थाश्च घुश्च तौ तयोः ।

सूत्रा०-निष्ठतेर्घुसंज्ञकाच्च परः सिच् किदनयोरिकारश्चान्तादेशो ...
त्मनेपदेषु । उपास्थित । उपास्थिषाताम् । उपास्थिषत । अदित । अधित ।

भा०-इत्त्वंकस्यतकारेत्त्वं दीर्घोमाभूदृतेऽपिसः ।
अनन्तरेप्लुतोमाभू-त्प्लुतश्चविषयेस्मृतः ॥१॥

१०७-न क्त्वा सेट् ॥१८॥

प०-नञ० । क्त्वा १ । १ सेट् १ । १ अनु० कित् ।

पदा०-सेट्=इटा सह वर्त्तमानः ।

सूत्रा-सेट् क्त्वा कित् भवति । देवित्वा । सेवित्वा । सेडिति किम्
क्त्वा किम्-निगृहीतिः । निकुचितिः ॥

भा०-नसेडितिकृतेऽकित्त्वे निष्ठायामवधारणात् ।
ज्ञापकान्नपरोक्षायां सनिझल्ग्रहणांयिदुः ॥

पद होता है आत्मनेपद में । विवाह समय के स्वीकार को उपयमन कहते
उपायत । उपायंस्त । यहां सिच् पक्ष में अनुनासिक लोप (१ । २ । १६ ...
होता है । और (उपा० १ । ३ । ५६) से आत्मनेपद होता है ॥ १६ ॥

१०६-स्था और घु संज्ञक धातुओं से परे सिच् कित्वत् होता
धातु को इकारान्तादेश होता है आत्मनेपद में । उपास्थित । अदित ।
से इकारादेश धातु से परे सिच् को कित् मान के गुण निषेध (१ ...
होता है ॥ १७ ॥

१०७-सेट् के सहित वर्त्तमान क्त्वा कित् नहीं होता है । देवित्वा ।
इत्यादि प्रयोगों में क्त्वा प्रत्यय को कित् मानके गुणादेश होता है ।
सहचार करके किया- निगृहीतिः । यहां कित् निषेध प्रयोग को मानि

इस्वंकित्संनियोगेन रेफात्त्वयंसुधीवनि ।
वस्वर्थंकिदतीदेशा–न्निगृहीतिःप्रयोजनम् ॥१८॥

१०८–निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥१९॥

-निष्ठा १ । १ शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ५ । १ अनु०-सेट् । कित् । न ॥
पदा०-शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः=शीङ् च स्विदिश्च मिदिश्च क्ष्विदिश्च धृट् च
| समाहारस्तस्मात् ॥
सूत्रा०-शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः परस्सेण्निष्ठा किन्न भवति । शयितः ।
यितवान् । प्रस्वेदितः । प्रस्वेदितवान् । मेदितः । मेदितवान् । क्ष्वेदितः । क्ष्वे-
तवान् । प्रधर्षितः । प्रधर्षितवान् । सेट् किम्-स्विन्नः । स्विन्नवान् । शीङोऽनु-
बन्धनिर्देशो यङ्लुङ्निवृत्त्यर्थः । शेशियतः । शेशियतवान् । स्विदिमिदिक्ष्विदिधृ-
षादितश्चेति निष्ठायामिट्प्रतिषेधे विभाषाभावादिकर्मणोरिति पाक्षिकेटि कि-
प्रतिषेधः ॥१९ ॥

१०९–मृषस्तितिक्षायाम् ॥ २० ॥

प०-मृषः ५ । १ तितिक्षायाम् ७ । १ अनु०-सेट् । निष्ठा । कित् । न ॥
सूत्रा०-मृषः परस्सेण्निष्ठा किन्न भवति तितिक्षायाम् । तितिक्षा सहनम् ।
र्षितः । मर्षितवान् । तितिक्षायां किम्-अपमृषितं वाक्यम् ॥ २० ॥

संप्रसारण (६।१।१६) और निकुचितिः । यहां कुञ्च के नकार का लोप (६।४।२४)
ता है । सेट् ग्रहण इसलिये है कि क्रुष्टा । यहां गुण नहीं होता ॥ १७ ॥
१०८–शीङ् स्विदि, मिदि, क्ष्विदि, धृष इन धातुओं से परे सेट् निष्ठा कित्
हीं होता है । शयितः । शयितवान् । इत्यादि में कित् निषेध से गुणादेश
ता है । सेट् ग्रहण क्यों किया–स्विन्नः । इत्यादि में कित् होने से गुणादेश
हुआ । शीङ् का अनुबन्ध के साथ निर्देश यङ्लुक् की निवृत्ति के लिये है ।
ः–शेश्यितः । इत्यादि में सेट् निष्ठा भी कित् संज्ञक होता है स्विदादिको
आ० । ७ । २ । १६) इट् का प्रतिषेध होने पर पाक्षिक (७ । २ । १७) से
होने पर कित्व प्रतिषेध होता है ॥
१०९–मृष धातु से परे सेट् निष्ठा कित् नहीं होता है तितिक्षा अर्थ में ।
तिक्षा सहने को कहते हैं । मर्षितः । मर्षितवान् । कित् का निषेध होने से
का निषेध न हुआ । तितिक्षा ग्रहण क्यों है–अपमृषितम् । यहां तितिक्षा अर्थ
कित्व निषेध नहीं होता है ॥ १०९ ॥

११०–उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥ २१ ॥

प०–उदुपधात् ५ । १ भावादिकर्मणोः ७ । २ अन्यतरस्याम्
अनु०–सेट् । निष्ठा । कित् । न ।

पदा०–उदुपधात्=उदुपधा यस्य तस्मात् । भावादिकर्मणोः=भावश्चादिकर्म च भावादिकर्मणी तयोः ॥

सूत्रा०–उदुपधात्परो भावादिकर्मणोर्वर्तमानस्सेण् निष्ठा प्रत्ययः किन्न .... तरस्याम् । कार्यप्रवृत्तौ प्रथमक्षणक्रियादिकर्म । द्युतितमनेन । द्योतितमनेन । ...तितः । प्रद्योतितः । उदुपधात् किम्–लिखितमनेन । भावादिकर्मणोरिति । रुचितं कार्षापणम् । सेट् किम् प्रभुक्तमोदनः । इह कस्मान्न भवति गुधितः । तवान् । उदुपधाच्छप । शब्विकरणेभ्य एवेष्यते । इति भाष्यम् । भाषया तत् सिद्धम् ॥

१११–पूङः क्त्वा च ॥ २२ ॥

प०–पूङः ५ । १ । क्त्वा १ । १ च । अनु०–सेट् । निष्ठा । कित्

११०–उकार जिस की उपधा हो उस से परे भाव और आदि कर्म में वर्तमान सेट् निष्ठा प्रत्यय विकल्प करके कित् वत् नहीं होता है । क... आरम्भ में जो प्रथम क्षण में करना है उस को आदि कर्म कहते हैं । ... द्योतितम् । यहां द्युतदीप्तौ धातु से भाव में क्त (३ । ३ । ११४) प्रत्यय हो उस को कित् विकल्प होने से पाक्षिक गुण होता है । प्रद्युतितः । प्रद्योति... आदि कर्म में । निम्न भाग के पाक्षिक गुण होता है । उदुपध ग्रहण क्यों कि... लिखितमनेन । यहां कित् का निषेध नहीं होता है । भावादि कर्म ग्रहण... है–रुचितम्–इत्यादि कर्म में विधान किये हुए क्त प्रत्यय को कित् निषेध । होता है । सेट् ग्रहण क्यों किया–प्रभुक्त ओदनः । यहां आदि कर्म में [illegible]... क्तादि निष्ठा के कित् का निषेध नहीं होता है ।

प्रश्न–गुधितः । गुधितवान् । यहां कित् निषेध क्यों नहीं होता है । उ० शप्-विकरण वाले जो उकारोपध धातु हैं उन्हीं से कित् निषेध इष्ट है । ... विभाषा मानने से सिद्ध है ॥

१११–पूङ् धातु से परे सेट् निष्ठा और क्त्वा कित् नहीं होते हैं । ... [illegible] कित् निषेध मानने से गुणादेश होता है ॥

सूत्रा०—पूङः परस्सेण्निष्ठा क्त्वा च किन्न भवति। पवितः । पवितवान् ॥
ग्रहण किमर्थं न क्त्वासेडिति सिद्धेः । भारद्वाजीयाः पठन्ति—नित्यमकित्व-
योः । क्त्वाग्रहणमुत्तरार्थम् । कथम्—विभाषायामध्ये च ये विधयस्ते नित्या भ-
। इति भाष्यम् ॥ २२ ॥

११२—नोपधात्थफान्ताद्वा ॥ २३ ॥

—नोपधात् ५। १ थफान्तात् ५।१। वा अ० । अनु०—सेट्। क्त्वा। कित् । न ।
पदा०—नोपधात्=नः उपधा यस्य तस्मात् । थश्च फश्च तौ थफौ अन्तश्चान्त-
। थफावन्तौ यस्य तस्मात् ॥
सूत्रा०—नकारोपधात्थफान्ताद्धातोः परस्सेट्क्त्वाप्रत्ययः किद्वा न भवति। ग्र-
। ग्रन्थित्वा। गुफित्वा । गुम्फित्वा । नोपधात् किम्—रेफित्वा । थफान्तात्
—स्रंसित्वा ॥ २३ ॥

११३—वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ॥ २४ ॥

प०—वञ्चिलुञ्च्यृतः ५। १। च अ० । अनु०—सेट् । क्त्वा । कित् । न ।
पदा०—वञ्चिश्च लुञ्चिश्च ऋच्चैषां समाहारस्तस्मात् ।
सूत्रा०—वञ्चिलुञ्च्यृतः परः सेट्क्त्वा किद्वा न भवति । वञ्चित्वा । व-

---

भाष्य०—न क्त्वा सेट् सूत्र से क्त्वा को कित् निषेध सिद्ध है फिर क्त्वा ग्रहण
किया—इस अंश में भारद्वाजीय आचार्य पढते हैं कि—षष्ठादि क्त्वा निष्ठा को
त्व नित्य होता है। क्त्वा ग्रहण अगले सूत्रों के लिये किया है। किस हेतु
त्व नित्य है—दो विभाषाओं के बीच जो विधि सूत्र आते वे नित्य होते हैं॥२२॥
११२—नकारोपध थान्त फान्त धातु से परे सेट् क्त्वाप्रत्यय कित् विकल्प
होता है। ग्रथित्वा। ग्रन्थित्वा । इत्यादि में वैकल्पिक कित् निषेध होने
(६ । ४ । २४) से पक्ष में नकार लोप होता है। नोपध ग्रहण क्यों किया-
त्वा । यहां (न क्त्वा सेट्) से नित्य कित्व निषेध हो कर गुणादेश होता है
न्तात् ग्रहण क्यों किया—स्रंसित्वा। यहां (न क्त्वा सेट्) से कित्व निषे
नि के न लोप नहीं होता है ॥ २३ ॥
११३—वञ्चि, लुञ्चि, ऋत इन धातुओं से परे सेट् क्त्वा विकल्प करिके
न हो। वञ्चित्वा, वचित्वा। इत्यादि में कित्पक्ष में नलोप होजाता है। ऋ
सौत्र (सूत्र में पढा हुआ) धातु है उस से ईयङ् (३।१।२९) से होता है। इस
कल्प पक्ष (३।१।३१) में यह उदाहरण है। ऋतित्वा। ऋर्तित्वा। कित्व विकल्प

चित्वा। लुञ्चित्वा। लुचित्वा। ऋतिस्सौत्रो धातुस्तत ऋतेरीयङितीयङ् तस्य विकल्पपक्षङ्ग्रहयते। ऋतित्वा। अर्तित्वा। सेट् किम्-ऋत्वा॥

११४—तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥ २५ ॥

प०–तृषिमृषिकृशेः ५। १ काश्यपस्य ६। १ अनु० सेट्। क्त्वा।

सूत्रा०–तृष्यादिभ्यः परस्सेट्क्त्वा किद् वा भवति काश्यपस्य मते। तृषित्वा। तर्षित्वा। मृषित्वा। मर्षित्वा। कृशित्वा। कर्शित्वा। काश्यपग्रहणं सं वेत्येव हि वर्त्तते ॥ २५ ॥

११५—रलोव्युपधाद्धलादेः सँश्च ॥ २६ ॥

प०–रलः ५। १ व्युपधात् ५। १ हलादेः ५। १ सन् १। १ च।
अनु०–सेट्। क्त्वा। कित्। वा॥

पदा०—व्युपधात्=उश्च इश्च वी तौ उपधे यस्य तस्मात्। हलादेः=हलादिर्यस्य तस्मात्॥

सूत्रा०—हलादेर्व्युपधाद्रलन्ताद्धातोः परस्सेट् क्त्वा सँश्च वा किद्भव द्युतित्वा। द्योतित्वा। दिद्युतिषते। दिद्योतिषते। लिखित्वा। लेखित्वा।

में धातिरूप हो जाता है। सेट् ग्रहण क्यों किया–ऋत्वा यहां क्त्वा को [illegible] मानि के [illegible] का लोप होजाता है॥

११४–तृषि, मृषि, कृश इन धातुओं से परे सेट् क्त्वा विकल्प करके कित् होते हैं। काश्यप आचार्य के मत में। तृषित्वा। तर्षित्वा। इत्यादि में अकित् पक्ष में गुण होजाता है। काश्यप ग्रहण सम्मान के लिये है। विकल्प तो पूर्व से आता ही है॥११४॥

११५–हलादि रलन्त इवर्ण उवर्ण उपध धातु से परे सेट् क्त्वा और सन् कित् विकल्प करके होते हैं। द्युतित्वा। द्योतित्वा। इत्यादि प्रयोगों में कित् पक्ष में गुण निषेध और अकित् में गुण विधान आदि कार्य होते हैं। रल् क्यों किया–देवित्वा। इत्यादि में [illegible] (१।२।१८) से निषेध होकर [illegible] होता है। व्युपधात् क्यों कहा–वर्तित्वा। विवर्तिषते। यहां [illegible] होकर [illegible] होता है। हलादि ग्रहण क्यों किया–एषित्वा। [illegible] अकित् में गुण होता है। सेट् ग्रहण क्यों किया–भुक्त्वा। यहां [illegible] कित् मानके गुण नहीं होता है। बुभुक्षते। यहां भी सन् को कित् (१।२।१०) से होकर गुण निषेध होता है॥११५॥

ाखिपति । लिलेखिपति ॥ रलः किम्-देवित्वा । दिदेविषति । व्युपधात् किम्-
सेवित्वा । विवर्त्तिषते । हलादेरिति किम्—एषित्वा । एषिषिषति ॥ सेट् किम्-
त्त्वा । बुभुक्षते ॥ २६ ॥

११६–ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ २७ ॥

प०—ऊकालः १ । १ अच् १ । १ ह्रस्वदीर्घप्लुतः १ । १ संज्ञासूत्रम् ॥

पदा०—ऊकालः=उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः वां कालः । ह्रस्वदीर्घप्लुतः=ह्र-
स्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च ॥ सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवतीत्येकत्वं, पुंस्त्वं सौत्रम् ॥

सूत्रा०—उ, ऊ, उ३ इत्येवंकालोऽच् क्रमेण ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञो भवति ।
कालो ह्रस्वः । दधि । मधु । ऊकालो दीर्घः । गौरी । कुमारी । उ३कालः
तः । देवदत्त३ । कालग्रहणं परिमाणार्थम् । दीर्घप्लुतयोर्ह्रस्वसंज्ञा माभूत् । प्रलूय ।
स्वाश्रयस्तुङ्न भवति । अज्ग्रहणं संयोगनिवृत्त्यर्थम् । प्रतक्ष्य । अच्समुदायनिवृत्त्यर्थं
—तितउच्छत्रम् । पदान्ताद्वेति पाक्षिकस्तुङ् न ॥ २७ ॥

११७–अचश्च ॥ २८ ॥

प०—अचः ६ । १ च अ० । अनु० अच् । ह्रस्वदीर्घप्लुतः । परिभाषेयम् ।

सूत्रा०—ह्रस्वदीर्घप्लुतशब्दैर्विधीयमानोऽच् अच एव स्थाने भवति । अतिरि ।
अतिनु । अचः किम्—सुवाक् ब्राह्मणकुलम् । हलो मा भूत् । चीयते । श्रूयते ।

११६–उ, ऊ, उ३ इन एकमात्रिक द्विमात्रिक त्रिमात्रिक उकारों के उच्चार-
ण समय के तुल्य उच्चारण समय जिस अच् का हो वह अच् क्रमसे ह्रस्व दीर्घ
प्लुत संज्ञक होता है । उकालह्रस्व—दधि । मधु । ऊकालदीर्घ–गौरी । कुमारी ।
उ३कालप्लुत—देवदत्त३ । यहां कालग्रहण परिमाण के लिये है । दीर्घप्लुत की ह्र-
स्वसंज्ञा नहीं होती । अतः–प्रलूय । यहां ह्रस्वाश्रय तुक् (६ । १ । ७१) से नहीं हो
ता है । अच् ग्रहण संयोगनिवृत्ति के लिये है । इस से प्रतक्ष्य । यहां (क् ष्) के
संयोग की अर्द्ध २ मात्रा को लेकर एकमात्रा मानि के ह्रस्वाश्रय तुक् नहीं होता
है । अच् ग्रहण अच्समुदाय की निवृत्ति के लिये भी है इस से–तितउच्छत्रम् ।
यहां (६ । १ । ७६) से वैकल्पिक तुक् नहीं होता है ॥ २७ ॥

११७—ह्रस्वदीर्घप्लुत शब्दों से विधीयमान अच् अच् ही के स्थान में होता
है । अतिरि । अतिनु । यहां (१ । २ । ४८) से ह्रस्वादेश होता है । अच्ग्रहण
क्यों किया–सुवाक् ब्राह्मणकुलम् । यहां हल् को ह्रस्व नहीं होता है । चीयते ।
श्रूयते । यहां दीर्घ (७ । ४ । २५) से होता है । मिद्यते । यहां हल् को दीर्घ

चित्वा । लुञ्चित्वा । लुचित्वा । ऋतिर्सौत्रो धातुस्तत ऋतेरीयङितीयङ् तस्य विकल्पपक्षउदाह्रियते । ऋतित्वा । अर्त्तित्वा । सेट् किम्-ऋत्वा ॥ २४ ॥

११४-तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥ २५ ॥

प०-तृषिमृषिकृशेः ५ । १ काश्यपस्य ६ । १ अनु० सेट् । क्त्वा । कित्

सूत्रा०-तृष्यादिभ्यः परस्सेट्क्त्वा किद् वा भवति काश्यपस्य मते । तृषित्वा तर्षित्वा । मृषित्वा । मर्षित्वा । कृशित्वा । कर्शित्वा । काश्यपग्रहणं संमानार्थमेव हि वर्त्तते ॥ २५ ॥

११५-रलोव्युपधाद्धलादेः संश्च ॥ २६ ॥

प०-रलः ५ । १ व्युपधात् ५ । १ हलादेः ५ । १ सन् १ । १ च अ० अनु०-सेट् । क्त्वा । कित् । वा ॥

पदा०—व्युपधात्=उश्च इश्च वी तौ उपधे यस्य तस्मात् । हलादेः=हल् आदिर्यस्य तस्मात् ॥

सूत्रा०—हलादेर्व्युपधाद्रलन्ताद्धातोः परस्सेट् क्त्वा संश्च वा किद्भवति द्युतित्वा । द्योतित्वा । दिद्युतिषते । दिद्योतिषते । लिखित्वा । लेखित्वा । लि

से पाक्षिकगुण होजाता है । सेट् ग्रहण क्योंकिया -वञ्चत्वा यहां क्त्वा को कित् मानि के वञ्चुधातु का नलोप होजाता है ॥

११४-तृषि, मृषि, कृश इन धातुओं से परे सेट् क्त्वा विकल्प करिके कित् होता है । काश्यप आचार्य के मतमें । तृषित्वा । तर्षित्वा । इत्यादि में अकित् गुण होजाता है । काश्यप ग्रहण सम्मान के लिये है । विकल्प तो पूर्वसूत्र से आता ही है ॥११४॥

११५-हलादि उकारोपध इकारोपध रलन्त धातु से परे सेट्क्त्वा और सेट् सन् कित् विकल्प करके होते हैं । द्युतित्वा । द्योतित्वा । इत्यादि प्रयोगों में कित् पक्ष में गुण निषेध और अकित्व में गुण विधान आदि कार्य होते हैं । रल् ग्रहण क्यों किया-देवित्वा । इत्यादि में नित्यकित् का (१।२।१८) से निषेध होकर गुण होता है । व्युपधात् क्यों कहा-वर्त्तित्वा । विवर्त्तिषते । यहां नित्यकित् का निषेध होकर गुणादेश होता है । हलादि ग्रहण क्यों किया—एषित्वा । यहां कित्वनिषेध मानिके गुण होता है । सेट्ग्रहण क्योंकिया-भुक्त्वा । यहां क्त्वा को कित्व मानिके गुण नहीं होता है । बुभुक्षते । यहां भी सन् को कित्व (१ । २ । १०) से होकर गुण निषेध होता है ॥११५॥

खिपति । लिलेखिषति ॥ रलः किम्—देवित्वा । दिदेविषति । व्युपधात् किम्—त्वा । विवर्तिषते । हलादेरिति किम्—एषित्वा । एषिषिषति ॥ सेट् किम्—त्वा । बुभुक्षते ॥ २६ ॥

११६—ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ २७ ॥

प०—ऊकालः १ । १ अच् १ । १ ह्रस्वदीर्घप्लुतः १ । १ संज्ञासूत्रम् ॥

पदा०—ऊकालः=उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः वां कालः । ह्रस्वदीर्घप्लुतः=ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च ॥ सर्वो द्वन्द्वो विभाषितत्वाद्भवतीत्येकत्वं, पुंस्त्वं सौत्रम् ॥

सूत्रा०—उ, ऊ, ऊ३ इत्येवंकालोऽच् क्रमेण ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञो भवति । एककालो ह्रस्वः । दधि । मधु । द्विकालो दीर्घः । गौरी । कुमारी । त्रिकालः प्लुतः । देवदत्त३ । कालग्रहणं परिमाणार्थम् । दीर्घप्लुतयोर्ह्रस्वसंज्ञा माभूत् । प्रत्लूय । ह्रस्वाश्रयस्तुङ्न भवति । अज्ग्रहणं संयोगनिवृत्त्यर्थम् । प्रतक्ष्य । अच्समुदायनिवृत्त्यर्थम्—तितउच्छत्रम् । पदान्ताद्वेति वालिकस्तुङ् न ॥ २७ ॥

११७—अचश्च ॥ २८ ॥

प०—अचः ६ । १ च अ० । अनु० अच् । ह्रस्वदीर्घप्लुतः । परिभाषेयम् ।

सूत्रा०—ह्रस्वदीर्घप्लुतशब्दैर्विधीयमानोऽच् अच एव स्थाने भवति । अतिरि । अतिनु । अचः किम्—सुवाक् ब्राह्मणकुलम् । हलो मा भूत् । धीयते । धूयते ।

११६—उ, ऊ, ऊ३ इन एकमात्रिक द्विमात्रिक त्रिमात्रिक उकारों के उच्चारणकाल के सदृश उच्चारण समय जिस अच् का हो वह अच् क्रमसे ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञक होता है । एककालह्रस्व—दधि । मधु । द्विकालदीर्घ—गौरी । कुमारी । त्रिकालप्लुत—देवदत्त३ । यहां कालग्रहण परिमाण के लिये है । दीर्घप्लुत की ह्रस्वसंज्ञा नहीं होती । अतः—प्रत्लूय । यहां ह्रस्वाश्रय तुक् (६ । १ । ७१) से नहीं होता है । अच् ग्रहण संयोगनिवृत्ति के लिये है । इस से प्रतक्ष्य । यहां (क्, ष्) के योग को कहुं २ मात्रा को लेकर एकमात्रा मानि के ह्रस्वाश्रय तुक् नहीं होता । अच् ग्रहण अच्समुदाय की निवृत्ति के लिये भी है इस से—तितउच्छत्रम् । यहां (६ । १ । ७६) से वैकल्पिक तुक् नहीं होता है ॥ २७ ॥

११७—ह्रस्वदीर्घप्लुत शब्दों से विधीयमान अच् अच् ही के स्थान में होता है । अतिरि । अतिनु । यहां (१ । २ । ४७) से ह्रस्वादेश होता है । अच्ग्रहण न करें तो—सुवाक् ब्राह्मणकुलम् । यहां हल् को ह्रस्व नहीं होता है । धीयते । धूयते । यहां दीर्घ (७ । ४ । २५) से होता है । यहां हल् को दीर्घ

चित्वा। लुञ्चित्वा । लुचित्वा । ऋतिर्सौत्रो धातुस्तत ऋतेरीयङितीयङ् तस्य विकल्पपक्षउदाह्रियते । ऋतित्वा । अर्त्तित्वा । सेट् किम्-ऋत्वा ॥ २४ ॥

११४–तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥ २५ ॥

प०–तृषिमृषिकृशेः ५ । १ काश्यपस्य ६ । १ अनु० सेट् । क्त्वा । कि

सूत्रा०–तृष्यादिभ्यः परस्सेट्क्त्वा किद् वा भवति काश्यपस्य मते । तर्षित्वा । मृषित्वा । मर्षित्वा । कृशित्वा । कर्शित्वा । वेत्येव हि वर्त्तते ॥ २५ ॥

११५–रलोव्युपधाद्धलादेः संश्च ॥ २६ ॥

प०–रलः ५ । १ व्युपधात् ५ । १ हलादेः ५ । १ सन् १ । १ च अ अनु०-सेट् । क्त्वा । कित् । वा ॥

पदा०—व्युपधात्=उश्च इश्च वी तौ उपधे यस्य तस्मात् । हलादेः=हल् आदिर्यस्य तस्मात् ॥

सूत्रा०—हलादेर्व्युपधाद्रलन्ताद्धातोः परस्सेट् क्त्वा सँश्च वा किद्भवति द्युतित्वा । द्योतित्वा । दिद्युतिषते । दिद्योतिषते । लिखित्वा । लेखित्वा । ि

से पाक्षिकगुण होजाता है । सेट् ग्रहण क्योंकिया –ग्रथित्वा यहां क्त्वा को कि मानि के ग्रहुपधातु का नलोप होजाता है ॥

११४–तृषि, मृषि, कृश इन धातुओं से परे सेट् क्त्वा विकल्प करिके कित् होता है। काश्यप आचार्य के मतमें । तृषित्वा । तर्षित्वा । इत्यादि में अकित् प गुण होजाता है । काश्यप ग्रहण सन्मान के लिये है । विकल्प तो पूर्वसू आता ही है ॥११४॥

११५–हलादि उकारोपध इकारोपध रलन्त धातु से परे सेट्क्त्वा और सन् कित् विकल्प करके होते हैं। द्युतित्वा । द्योतित्वा । इत्यादि प्रयोगों में कि पक्ष में गुण निषेध और अकित्व में गुण विधान आदि कार्य होते हैं । रल् ग्रह क्यों किया–देवित्वा । इत्यादि में नित्यकित् का (१।२।१८) से निषेध होकर गु होता है । व्युपधात् क्यों कहा–वर्त्तित्वा । विवर्त्तिषते । यहां नित्यकित् का नि षेध होकर गुणादेश होता है । हलादि ग्रहण क्यों किया—एषित्वा । य कित्वनिषेध मानिके गुण होता है । सेट्ग्रहण क्योंकिया–भुक्त्वा । यहां अनि क्त्वा को कित्व मानिके गुण नहीं होता है । बुभुक्षते । यहां भी सन् को नि कित्व (१ । २ । १०) से होकर गुण निषेध होता है॥२६॥

खिपति । मिलेखिपति ॥ रलः किम्—देवित्वा । दिदेविषति । व्युपधात् किम्—
वित्वा । विवर्तिषते । हलादेरिति किम्—एषित्वा । एषिषिषति ॥ सेट् किम्—
भुक्त्वा । बुभुक्षते ॥ २६ ॥

११६—ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ २७ ॥

प०—ऊकालः १ । १ अच् १ । १ ह्रस्वदीर्घप्लुतः १ । १ संज्ञासूत्रम् ॥

पदा०—ऊकालः=उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः वां कालः । ह्रस्वदीर्घप्लुतः=ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च ॥ सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवतीत्येकत्वं, पुंस्त्वं सौत्रम् ॥

सूत्रा०—उ, ऊ, उ३ इत्येवंकालोऽच् क्रमेण ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञो भवति । उकालो ह्रस्वः । दधि । मधु । ऊकालो दीर्घः । गौरी । कुमारी । उ३कालः प्लुतः । देवदत्त३ । कालग्रहणं परिमाणार्थम् । दीर्घप्लुतयोर्ह्रस्वसंज्ञा माभूत् । प्रलूय । ह्रस्वाश्रयस्तुङ् न भवति । अज्ग्रहणं संयोगनिवृत्त्यर्थम् । प्रतक्ष्य । अच्समुदायनिवृत्त्यर्थ—तितउच्छत्रम् । पदान्ताद्वेति पाक्षिकस्तुट् न ॥ २७ ॥

११७—अचश्च ॥ २८ ॥

प०—अचः ६ । १ च अ० । अनु० अच् । ह्रस्वदीर्घप्लुतः । परिभाषेयम् ।

सूत्रा०—ह्रस्वदीर्घप्लुतशब्दैर्विधीयमानोऽच् अच एव स्थाने भवति । अतिरि । अतिनु । अचः किम्—सुवाक् ब्राह्मणकुलम् । हलो मा भूत् । चीयते । श्रूयते ।

११६—उ, ऊ, ऊ३ इन एकमात्रिक द्विमात्रिक त्रिमात्रिक उकारों के उच्चारण समय के सदृश उच्चारण समय जिस अच् का हो वह अच् क्रमसे ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञक होता है । उकालह्रस्व—दधि । मधु । ऊकालदीर्घ—गौरी । कुमारी । उ३कालप्लुत—देवदत्त३ । यहां कालग्रहण परिमाण के लिये है । दीर्घप्लुत की ह्रस्वसंज्ञा नहीं होती । अतः—प्रलूय । यहां ह्रस्वाश्रय तुक् (६ । १ । ७१) से नहीं होता है । अच् ग्रहण संयोगनिवृत्ति के लिये है । इस से प्रतक्ष्य । यहां (क् ष्) के संयोग की अर्द्ध २ मात्रा को लेकर एकमात्रा मानि के ह्रस्वाश्रय तुक् नहीं होता है । अच् ग्रहण अच्समुदाय की निवृत्ति के लिये भी है इस से—तितउच्छत्रम् । यहां (६ । १ । ७६) से वैकल्पिक तुक् नहीं होता है ॥ २७ ॥

११७—ह्रस्वदीर्घप्लुत शब्दों से विधीयमान अच् अच् ही के स्थान में होता है । अतिरि । अतिनु । यहां (१ । २ । ४८) से ह्रस्वादेश होता है । अच्ग्रहण क्यों किया—सुवाक् ब्राह्मणकुलम् । यहां हल् को ह्रस्व नहीं होता है । चीयते । श्रूयते । यहां दीर्घ (७ । ४ । २५) से होता है । भिद्यते । यहां हल् को दीर्घ

िखिपति । निलेखिपति ॥ रलः किम्—देवित्वा । दिदेविषति । व्युपधात् किम्—
वैत्त्वा । विवर्तिषते । हलादेरिति किम्—एषित्वा । एषिषिषति ॥ सेट् किम्—
त्वा । बुभुक्षते ॥ २६ ॥

११६—ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ २७ ॥

प०—ऊकालः १ । १ अच् १ । १ ह्रस्वदीर्घप्लुतः १ । १ संज्ञासूत्रम् ॥

पदा०—ऊकालः=उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः वां कालः । ह्रस्वदीर्घप्लुतः=ह्र-
स्व दीर्घश्च प्लुतश्च ॥ सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवतीत्येकत्वं, पुस्त्वं सौत्रम् ॥

सूत्रा०—उ, ऊ, उ३ इत्येवंकालोऽच् क्रमेण ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञो भवति ।
कालो ह्रस्वः । दधि । मधु । ऊकालो दीर्घः । गौरी । कुमारी । उ३कालः
तः । देवदत्त३ । कालग्रहणं परिमाणार्थम् । दीर्घप्लुतयोर्ह्रस्वसंज्ञा माभूत् । प्रलूय ।
त्वाश्रयस्तुङ्न भवति । अज्ग्रहणं संयोगनिवृत्त्यर्थम् । प्रतक्ष्य । अच्समुदायनिवृत्त्यर्थं
—तितउच्छत्रम् । पदान्ताद्वेति पाक्षिकस्तुङ् न ॥ २७ ॥

११७—अचश्च ॥ २८ ॥

प०—अचः ६ । १ च अ० । अनु० अच् । ह्रस्वदीर्घप्लुतः । परिभाषेयम् ।

सूत्रा०—ह्रस्वदीर्घप्लुतशब्दैर्विधीयमानोऽच् अच एव स्थाने भवति । अतिरि ।
तिनु । अचः किम्—सुवाक् ब्राह्मणकुलम् । हलो मा भूत् । चीयते । श्रूयते ।

११६—उ, ऊ, ऊ३ इन एकमात्रिक द्विमात्रिक त्रिमात्रिक उकारों के उच्चार-
ण समय के सदृश उच्चारण समय जिस अच् का हो वह अच् क्रमसे ह्रस्व दीर्घ
प्लुत संज्ञक होता है । उकालह्रस्व—दधि । मधु । ऊकालदीर्घ—गौरी । कुमारी ।
उ३कालप्लुत—देवदत्त३ । यहां कालग्रहण परिमाण के लिये है । दीर्घप्लुत की ह्र-
स्वसंज्ञा नहीं होती । अतः—प्रलूय । यहां ह्रस्वाश्रय तुक् (६ । १ । ७१) से नहीं हो
ता है । अच् ग्रहण संयोगनिवृत्ति के लिये है । इस से प्रतक्ष्य । यहां (क् ष्) के
संयोग की अर्द्ध २ मात्रा को लेकर एकमात्रा मानि के ह्रस्वाश्रय तुक् नहीं होता
है । अच् ग्रहण अच्समुदाय की निवृत्ति के लिये भी है इस से-तितउच्छत्रम् ।
यहां (६ । १ । ७६) से वैकल्पिक तुक् नहीं होता है ॥ २७ ॥

११७—ह्रस्वदीर्घप्लुत शब्दों से विधीयमान अच् अच् ही के स्थान में होता
है । अतिरि । अतिनु । यहां (१ । २ । ४८) से ह्रस्वादेश होता है । अच्ग्रहण
क्यों किया—सुवाक् ब्राह्मणकुलम् । यहां हल् को ह्रस्व नहीं होता है । चीयते ।
श्रूयते । यहां दीर्घ (७ । ४ । २५) से होता है । भिद्यते । यहां हल् को दीर्घ

सूत्रा०-नीचैरुपलभ्यमानोऽजनुदात्तसंज्ञो भवति । समाने स्थाने नीचभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तधर्मं लभते । हिरण्यगर्भः ॥

* आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य । अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य ॥१॥ समानेप्रक्रमइति वक्तव्यम् । इति भाष्ये

१२०—समाहारः स्वरितः ॥ ३१ ॥

प०-समाहारः १ । १ स्वरितः १ । १ अनु०-अच् । उदात्तः।अनुदात्तः ॥

पदा०-समाहारः=समाह्रियेते उदात्तानुदात्तौ यस्मिन्निति । अधिकरणे घञ् । सामर्थ्यादत्रोदात्तत्वानुदात्तत्वधर्मौ गृह्येते । संज्ञासूत्रम् ॥

सूत्रा०-उदात्तत्वानुदात्तत्वधर्मद्वयसहितोऽच् स्वरितसंज्ञो भवति । क । कर्त्तव्यम् ॥

१२१—तस्यादितउदात्तमर्द्धह्रस्वम् ॥ ३२ ॥

हिरण्यगर्भः । यहां हिरण्य और गर्भ शब्द के समास में समासान्तोदात्त (६।१।२२३) से होता पीछे बर्ब्यमानस्वर (६ । १ । १५८) और समतर (अनुदात्तस्तर ।२।४०) से होजाता है ॥ ३० ॥

१२०-उदात्तपन और अनुदात्तपन सहित जो अच् वह स्वरित संज्ञक होता । क । यहां (६।१।१८५) से स्वरित हुआ । कर्त्तव्यम् । यहां भी स्वरित हुआ ॥३१॥

१२१-उस स्वरित के आदि में अर्द्धमात्रा उदात्त और परिशिष्ट अनुदात्त जाननी चाहिये । जैसे-क । यहां आधीमात्रा आदि में उदात्त शेष अनुदात्त है । व्या । यहां अर्द्धमात्रा उदात्त शेष डेढ़मात्रा अनुदात्त है । माणवक३ । यहां (स्व० मा० ८ । २ । १८३) से भर्त्सन अर्थ में प्लुतस्वरित होता है । यहां भी अर्द्धमात्रा दात्त और शेष ढाईमात्रा अनुदात्त हैं ।

+ आयामो गात्राणां निग्रहः । दारुण्यं स्वरस्य दारुणता रूक्षता । अणुता कण्ठस्य संवृतता । उच्चैःकराणि शब्दस्य ॥ अन्ववसर्गो गात्राणां शिथिलता । मार्दवं स्वरस्य मृदुता स्निग्धता । उरुता महत्ता कण्ठस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य ॥ [illegible] यदि [illegible] एवंविधं [illegible] स्थाने [illegible] [illegible] उदात्तो [illegible] [illegible] अनुदात्तो भवति । [illegible]

[illegible]

सुप्रा०—नीचैरुपलभ्यमानोऽजनुदात्तसंज्ञो भवति । समाने स्थाने नीचभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तधर्मं लभते । हिरण्यगर्भः ॥

* आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य । अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य ॥१॥ समानेमक्रमइति वक्तव्यम् । इति भाष्ये

१२०—समाहारः स्वरितः ॥ ३१ ॥

प०—समाहारः १ । १ स्वरितः १ । १ अनु०—अच् । उदात्तः।अनुदात्तः ॥

पदा०—समाहारः=समाह्रियेते उदात्तानुदात्तौ यस्मिन्निति । अधिकरणे घञ् । सामर्थ्यादत्रोदात्तत्वानुदात्तत्वधर्मौ गृह्येते । संज्ञासूत्रम् ॥

सुप्रा०—उदात्तत्वानुदात्तत्वधर्मद्वयसहितोऽच् स्वरितसंज्ञो भवति । क । कर्त्तव्यम् ॥

१२१—तस्यादितउदात्तमर्द्धह्रस्वम् ॥ ३२ ॥

हिरण्यगर्भः । यहां हिरण्य और गर्भ शब्द के समास में समासान्तोदात्त (६।१।२२३) से होता पीछे वर्ज्यमानस्वर (६।१।१५८) और सन्नतर (अनुदात्ततर १।२।४०) से होजाता है ॥ ३० ॥

१२०—उदात्तपन और अनुदात्तपन सहित जो अच् वह स्वरित संज्ञक होता है । क । यहां (६।१।१८५) से स्वरित हुआ । कर्त्तव्यम् । यहां भी स्वरित हुआ ॥३१॥

१२१—उस स्वरित के आदि में अर्द्धमात्रा उदात्त और परिशिष्ट अनुदात्त जाननी चाहिये । जैसे-क । यहां आधीमात्रा आदि में उदात्त शेष अनुदात्त है । कन्या । यहां अर्द्धमात्रा उदात्त शेष डेढ़मात्रा अनुदात्त है । माणवक३ । यहां (स्वरित मा० ८ । २ । १०३) से भर्त्सन अर्थ में प्लुतस्वरित होता है । यहां भी अर्द्धमात्रा उदात्त और शेष ढाईमात्रा अनुदात्त हैं ।

\+ आयामो गात्राणां निग्रहः । दारुण्यं स्वरस्य दारुणता रूक्षता । अणुता खस्य कण्ठस्य संवृतता । उच्चैःकराणि शब्दस्य ॥ अन्ववसर्गो गात्राणां शिथिलता । मार्दवं स्वरस्य मृदुता स्निग्धता । उरुता खस्य महत्ता कण्ठस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य ॥ समानस्थाने सर्वो स्वरितमिति प्रश्नः यथानुश्रूयते हिमावद्धं-एकस्मिं स्ताल्वादिके स्थाने ऊर्ध्वाधरभागयुक्ते ऊर्ध्वभागे निष्पन्नोऽच् उदात्तोऽधोभागे निष्पन्नोऽच् अनुदात्तो भवति । एवमुच्चैरित्यनेनोर्ध्वभागो दृश्यते नीचैरित्यनेनाधोभागः । अत्यादसमभिव्याहारार्थं निर्देशः । मद्ध्यादिषु विशेषयति ॥

प०-तस्य ६ । १ आदितः अ० उदात्तम् १ । १ । अर्द्धह्रस्वम् १ । १ ॥

पदा०-तस्य=पूर्वोक्तस्य स्वरितस्य । आदितः=आदाविति । अर्द्धह्रस्वम्=ह्रस्वस्यार्द्धम् । परिभाषेयम् ॥

सूत्रा०-तस्य स्वरितस्यादावर्द्धमात्रोदात्ता परिशिष्टानुदात्ता विज्ञेया । यथा कः अर्द्धमात्रोदात्तार्द्धमात्रानुदात्ता । कन्या । अर्द्धमात्रोदात्ता । शिष्टा सार्द्धैकमात्राऽनुदात्ता । माणवक ३ माणवक । अर्द्धमात्रोदात्ता परिशिष्टे सार्द्धद्विमात्रे अनुदात्ते ॥ ह्रस्वादिभेदेन—अ. इ. उ. ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादशभेदा भवन्ति । तद्यथा-ह्रस्वोदात्तः । ह्रस्वानुदात्तः । ह्रस्वस्वरितः । दीर्घोदात्तः । दीर्घानुदात्तः दीर्घस्वरितः । प्लुतोदात्तः । प्लुतानुदात्तः । प्लुतस्वरितः । अनुनासिकाननुनासिकभेदेनाष्टादश॰ लृवर्णस्यैचां च द्वादश द्वादशैव ॥ ३२ ॥

१२९-एकश्रुति दूरात् संबुद्धौ ॥३३॥

प०-एकश्रुति १ । १ दूरात् ५ । १ संबुद्धौ ७ । १ ।

पदा०—एकश्रुति-एका श्रुतिर्यस्य तत् । दूरात्=विप्रकृष्टात् । संबुद्धौ=संबोधने ॥ नचेह पारिभाषिकी संबुद्धिर्गृह्यते ।

ह्रस्वदीर्घप्लुत उदात्त अनुदात्त स्वरित और सानुनासिक निरनुनासिक भेद से अ. इ. उ. ऋ इन वर्णों में एक एक के अठारह२ भेद होते हैं । जैसे प्रथम प्रकार ह्रस्वोदात्त, ह्रस्वानुदात्त, ह्रस्वस्वरित, दीर्घोदात्त, दीर्घानुदात्त, दीर्घस्वरित प्लुतोदात्त, प्लुतानुदात्त, प्लुतस्वरित, येही अनुनासिक के साथ नव भेद और हो जाते हैं । अतः सब मिलकर अठारह भेद होजाते हैं । इसी प्रकार इकारादि वर्णों के अठारह अठारह भेद होते हैं । लृवर्ण के बारह भेद और ए ऐ ओ औ इन के भी बारह बारह भेद होते हैं ॥ ३२ ॥

१२९-दूर से संबोधन (पुकारने) में जो वाक्य वह एकश्रुति होता है ॥ उदात्तानुदात्तस्वरित इन का विभाग के विना जो उच्चारण है उस को एकश्रुति कहते हैं । आगच्छ भोमाणवक देवदत्त ३ । यहां—आगच्छ भोमाणवक देवदत्त ३ इस प्रकार उदात्तानुदात्तस्वरित इन का अलग २ उच्चारण चाहिये पर एकश्रुति होने से निर्भेद उच्चारण होता है । दूर से ग्रहण क्यों किया—आगच्छ भो माणवक । यहां एकश्रुति नहीं होती है किन्तु (गति० ६ । २ । ४९) आ के

॰+ लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति॥ तं द्वादशं भेदमाचक्षते ॥ सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति तान्यपि द्वादशप्रभेदानि ॥ इति शिक्षासूत्रेषु ॥

सूत्रा०-यज्ञकर्मणि वौषट्शब्दउदात्ततरो वा भवत्येकश्रुतिर्वा । सोमस्याग्ने वीहि३वौ३षट् । सोमस्याग्नेवीहि३ वौ३षट् ॥

१२५-विभाषा छन्दसि ॥३६॥

प०-विभाषा अ० । छन्दसि ७ । १ अनु०-एकश्रुति ॥

सूत्रा०-छन्दसि विभाषैकश्रुतिर्भवति पक्षे (यथास्वरम्) इषेत्वोर्ज्जेत्वा यवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु० । इषेत्वोर्ज्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रा तु० इत्यादि । वेति प्रकृते विभाषाग्रहणं यज्ञकर्मणीत्यस्य निवृत्त्यर्थम् । तेन स्वाध्यायकालेऽपि पाक्षिकैकश्रुतिर्भवति । व्यवस्थितविभाषेयमिति केचित्तत्रेयं व्यवस्था वेदमन्त्राणां नित्यं त्रैस्वर्यं ब्राह्मणवाक्यानां नित्यमेकश्रुतिरिति ॥३६॥

१२६-न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥३७॥

प०-न अ० । सुब्रह्मण्यायाम् ७ । १ स्वरितस्य ६ । १ तु अ० । उदा १ । १ अनु०-एकश्रुति ॥

पदा०-सुब्रह्मण्यायाम्=शोभनं ब्रह्म सुब्रह्म तस्मिन् साध्वी तस्याम् ॥

सूत्रा०-यज्ञकर्मणि० विभाषाछन्दसीति च प्राप्तावेकश्रुतिः प्रतिषिध्यते ॥

यत् उच्चारण हो । साम में निषेध क्यों किया-स्वरों से जो विशेषगान गाये जाते हैं वे साम कहाते हैं-ए३विश्वं० इत्यादि सामगान यथोक्त करना चाहिये क्यों यहां एकश्रुति होने से गान का अभाव होजावे ॥

१२४-यज्ञकर्म में वौषट् शब्द अत्यन्त उदात्त होता है विकल्प से दूसरे में एकश्रुति होती है । सोमस्या० इत्यादि में दोनों पक्ष होते हैं ॥ ३५ ॥

१२५-यज्ञकर्म से अन्यत्र स्वाध्यायकालिक वेदोच्चारण में एकश्रुति विकल्प से होती है । पक्षान्तर में यथा प्राप्तस्वर होते हैं । इषेत्वो० इत्यादि मन्त्रों स्वाध्याय (नैत्यिक) पाठ में दोनों पक्ष होते हैं अर्थात् यथावत् स्वरोच्चारण या एकश्रुति से पाठ होता है । कोई कहते हैं यहां विभाषा ग्रहण व्यवस्थित व्यवस्था के लिये हुए है इस से वेदमन्त्रों में यथोक्त स्वरोच्चारण और ब्राह्मण वाक्यों में नित्य एकश्रुति होती है ॥

१२६-सुब्रह्मण्या में एकश्रुति न हो किन्तु स्वरित को उदात्त हो । यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु । विभाषाछन्दसि । इनसे प्राप्त एकश्रुति का प्रतिषेध किया जाता है-

त्तो भवति गार्ग्यो यजते ॥ अमुष्येत्यन्तः । षष्ठ्यन्तस्यापि प्राग्वत् । दाक्षेः पिता यजते ॥ स्यान्तस्योपोत्तमं च । चादन्तस्तेन द्वावुदात्तौ । गार्ग्यस्य पिता यजते ॥ वा नामधेयस्य । स्यान्तस्य नामधेयस्योपोत्तममन्तं चोदात्तं वा भवति । देवदत्तस्य पिता यजते ॥३७॥

१२७–देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥३८॥

प०–देवब्रह्मणोः ६ । २ अनुदात्तः १ । १ अनु०–सुब्रह्मण्यायाम् । स्वरितस्य ॥

पदा०–देवब्रह्मणोः=देवश्च ब्रह्म च ते तयोः ॥

सूत्रा०–सुब्रह्मण्यायां देवब्रह्मणोरनुदात्तो भवति ॥

देवब्रह्मणोरामन्त्रिताद्युदात्ते शिष्टस्य वर्ज्यस्वरेणानुदात्तेऽनुदात्तस्वरितस्यानुदात्तो विधीयते ॥३८॥

१२८–स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥३९॥

प०–स्वरितात् ५ । १ संहितायाम् ७ । १ अनुदात्तानाम् ६ । ३ ॥

पदा०–अनुदात्तानाम्=अनुदात्तस्य च, अनुदात्तयोश्च, अनुदात्तानां च तेषाम्

सूत्रा०–स्वरितात्परेषां संहितायामनुदात्तानामेकश्रुतिर्भवति ।

---

१ । (९७) से गार्ग्य शब्द को आद्युदात्त प्राप्त है उस को अन्तोदात्त होता है। गार्ग्य से परे 'यजते, तिङन्त को निघातस्वर (८ । १ । २८) हो जाता है॥ प्रश्नपक्ष में षष्ठ्यन्त को अन्तोदात्त हो। दाक्षेः पिता यजते। यहां भी दाक्षि शब्द (४ । १ । ९५) इञ् प्रत्ययान्त होने से (६ । १ । १९७) से आद्युदात्त होता था उस को अन्तोदात्त हुआ॥ स्यान्त षष्ठ्यन्त का उपोत्तम (अन्त का समीप) और अन्त दोनों उदात्त होते हैं। इस में–गार्ग्यस्य पिता यजते। यहां र्ग्य, स्य, दो उदात्त हुए॥ स्यान्त नामवाचक का उपोत्तम और अन्त दोनों विकल्प से उदात्त होते हैं। देवदत्तस्य पिता यजते। यहां देवदत्त शब्द को अन्तोदात्त (६ । २ । १४८) से प्राप्त है उस का उपोत्तम और अन्त दोनों उदात्त होते हैं॥ ३७॥

१२७-सुब्रह्मण्या निगद में देव और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को अनुदात्त होता है। देवा ब्रह्माण आगच्छत। यहां देव ब्रह्मन् शब्दों को आमन्त्रिताद्युदात्त शेष को वर्ज्यस्वर से अनुदात्त और आद्युदात्त से परे अनुदात्त को [illegible] होता उस को अनुदात्त विधान किया है॥ ३८॥

१२८–स्वरित से परे संहिता में अनुदात्तों को एकश्रुति होती है। इमं मे अन्तोदात्त पदम् के मकार को अकार (८ । ४ । ६६) से होने पीछे [illegible]

इमंमे गङ्गे यमुने सरस्वति । माणवक जटिलकाध्यापक क गमिष्यसि । इ-त्यन्तोदात्तो मे इति विधानकालेऽनुदात्तस्योदात्तपरस्य स्वरितत्वम् । गङ्गे-त्यस्यामन्त्रिता निघातादिति तेषां स्वरितात् परेषामेकश्रुतिर्भवति । माणवकश-ब्दे प्रथमाक्षरमाद्युदात्तं ततः परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वं तस्मात् परेषामनुदा-त्तानामेकश्रुतिर्भवति ॥ ३९ ॥

१२९–उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥४०॥

प०–उदात्तस्वरितपरस्य ६ । १ सन्नतरः १ । १ अनु०–अनुदात्तानाम् ॥

पदा०–उदात्तस्वरितपरस्य–उदात्तश्च स्वरितश्च तौ परश्च परश्च तौ । उदात्त-स्वरितौ परौ यस्मात्तस्य । अनुदात्तानाम्=अनुदात्तस्य । सामान्याधिकरण्यादे-कम् ॥

सूभा०–उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य सन्नतरो (अनुदात्ततरो) भवति । देवा मरुतः पृश्निमातरोऽपः । अत्र दा, रु,श्नि,पा,उदात्तास्तेषां पूर्वस्वरे-ष्वनुदात्तास्तेषामुदात्तपराणामनुदात्ततरो विधीयते । अध्यापक क । अत्रामन्त्रि-ताद्युदात्तं शिष्टस्यानुदात्तत्वं विधीयते । कोति स्वरितस्तस्मिन् परे ककारस्यानुदा-त्ततरत्वं भवति ॥ ४० ॥

१३०–अपृक्त एकाल् प्रत्ययः ॥ ४१ ॥

…त्त ब्द मे अनुदात्त अम् के अकार से एकादेश होता है सह (८ । २ । ५) से …दात्त है एवं अन्तोदात्त इमं इस से मे अनुदात्त (८ । १ । २२) का स्वरित (८ । ४ । ६६) से हुआ इस से परे गङ्गे आदि अनुदात्तों को एकश्रुति होती है । माणवक में मा उदात्त है इस से ण अनुदात्त को स्वरित होकर स्वरित से परे अनुदात्तों को एकश्रुति होती है ॥ ३९ ॥

१२९–उदात्त परक वा स्वरित परक अनुदात्त को अत्यन्त अनुदात्त होता है । देवाः । यहां वा (६ । १ । १६६) उदात्त, मरुतः–रु (३ । १ । ३) पृश्नि-मातरः–श्नि (६ । २ । १) अपः–पः (६ । १ । १६१) उदात्त हैं शेष अपने कार (६ । १ । १५८) से अनुदात्त हैं इन में उदात्त जिन से परे हैं उन को अ-नुदात्त होता है । अध्यापक यहां आमन्त्रितमाद्युदात्त (६ । १ । १९८) से अ को उदात्त हो कर शेष वर्जमान से अनुदात्त हो जाते हैं । क पद स्वरित (६ । १ । १८५) से है उस से परे क को अनुदात्ततर होता है ॥ ४० ॥

त्तो भवति गार्ग्यो यजते ॥ अमुप्येत्यन्तः । षष्ठ्यन्तस्यापि मान्तः । दाक्षेः पिता यजते ॥ स्यान्तस्योपोत्तमं च । चादन्तस्तेन द्वावुदात्तौ । गार्ग्यस्य पिता यजते ॥ वा नामधेयस्य । स्यान्तस्य नामधेयस्योत्तममन्तं चोदात्तं वा भवति । देवदत्तस्य पिता यजते ॥३७॥

१२७—देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥३८॥

प०—देवब्रह्मणोः ६ । २ अनुदात्तः १ । १ अनु०—सुब्रह्मण्यायाम् । स्वरितस्य ।

पदा०—देवब्रह्मणोः=देवश्च ब्रह्म च ते तयोः ॥

सूत्रा०—सुब्रह्मण्यायां देवब्रह्मणोरनुदात्तो भवति ॥

देवब्रह्मणोरामन्त्रिताद्युदात्ते शिष्टस्य वर्ज्यस्वरेणानुदात्तेऽनुदात्तस्वरितस्यानुदात्तो विधीयते ॥३८॥

१२८—स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥३९॥

प०—स्वरितात् ५ । १ संहितायाम् ७ । १ अनुदात्तानाम् ६ । ३ ॥

पदा०—अनुदात्तानाम्=अनुदात्तस्य च, अनुदात्तयोश्च, अनुदात्तानां च तेषाम्

सूत्रा०—स्वरितात्परेषां संहितायामनुदात्तानामेकश्रुतिर्भवति ।

---

१ । (१९७) से गार्ग्य शब्द को आद्युदात्त प्राप्त है उस को अन्तोदात्त होता है गार्ग्य से परे 'यजते' तिङन्त को निघातस्वर (८ । १ । २८) हो जाता है । सुब्रह्मण्या में षष्ठ्यन्त को अन्तोदात्त हो । दाक्षेः पिता यजते । यहां भी दाक्षि शब्द (४ । १ । ९५) इञ् प्रत्ययान्त होने से (६ । १ । १९७) से आद्युदात्त होता था उस को अन्तोदात्त हुआ ॥ स्यान्त षष्ठ्यन्त का उपोत्तम (अन्त का समीप) और अन्त दोनों उदात्त होते हैं । इस में—गार्ग्यस्य पिता यजते । यहां र्ग्य, स्य, दो उदात्त हुए ॥ स्यान्त नामवाचक का उपोत्तम और अन्त दोनों विकल्प से उदात्त होते हैं । देवदत्तस्य पिता यजते । यहां देवदत्त शब्द को अन्तोदात्त (६ । २ । १४८) से प्राप्त है उस का उपोत्तम और अन्त दोनों उदात्त होते हैं ॥ ३७ ॥

१२७—सुब्रह्मण्या निगद में देव और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को अनुदात्त होता है । देवा ब्रह्माण आगच्छत । यहां देव ब्रह्मन् शब्दों को आमन्त्रिताद्युदात्त शेष को वर्ज्यस्वर से अनुदात्त और आद्युदात्त से पर अनुदात्त को जो स्वरित होता उस को अनुदात्त विधान किया है ॥ ३८ ॥

१२८—स्वरित से परे संहिता में अनुदात्तों को एकश्रुति होती है । इसे के अन्तोदात्त पदम् के मकार को अकार (८ । ३ । १३१) से होने पीछे अका

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति । माणवक जटिलकाध्यापक क्व गमिष्यसि । इ-त्यत्र स्वरितोदात्तो मे इति विधानकालेऽनुदात्तस्योदात्तपरस्य स्वरितत्वम् । गङ्गे-त्यत्रामन्त्रिता निघाताः इति तेषां स्वरितात् परेषामेकश्रुतिर्भवति । माणवकज-टिलेषु यथाक्रममाद्युदात्तं ततः परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वं तस्मात् परेषामनुदा-त्तानामेकश्रुतिर्भवति ॥३९॥

१२९–उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥४०॥

प०–उदात्तस्वरितपरस्य ६ । १ सन्नतरः १ । १ अनु०–अनुदात्तानाम् ॥

पदा०–उदात्तस्वरितपरस्य–उदात्तश्च स्वरितश्च तौ परश्च परश्च तौ । उदात्त-स्वरितौ परौ यस्मात्तस्य । अनुदात्तानाम्=अनुदात्तस्य । सामानाधिकरण्यादे-कत्वम् ॥

सूभा०–उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य सन्नतरो (अनुदात्ततरो) भवति । देवा मरुतः पृश्निमातरोऽपः । अत्र वा, रु,श्नि,पा,उदात्तास्तेषां पूर्वस्वरे-णानुदात्तानामेवामुदात्तपराणामनुदात्ततरो विधीयते । अध्यापक क्व । अत्रामन्त्रि-तत्वानुदात्तं शिष्टस्यानुदात्तत्वं विधीयते । क्वेति स्वरितस्तस्मिन् परे ककारस्यानुदा-त्ततरत्वं भवति ॥ ४० ॥

१३०–अपृक्त एकाल् प्रत्ययः ॥ ४१ ॥

यात्त इत् से अनुदात्त अम् के अकार से एकादेश होता है वह (८ । २ । ५) से उदात्त है एवं अनोदात्त इसे इस से से अनुदात्त (८ । २ । ६१) को स्वरित (८ । ४ । ६६) से हुआ उस से परे गङ्गे आदि अनुदात्तों को एकश्रुति होती है। माणवक में मा उदात्त है उस से ण अनुदात्त को स्वरित होकर स्वरित से परे अनुदात्तों को एकश्रुति होती है ॥ ३९ ॥

१२९–उदात्त परक वा स्वरित परक अनुदात्त को सन्नतर अनुदात्त होता है। देवाः। यहां वा (६ । १ । १९९) उदात्त, मरुतः–रु (३ । १ । ३) पृश्नि-मातरः–श्नि (६ । २ । १) अपः–पा (६ । १ । १९१) उदात्त हैं शेष सर्वा-नुदात्त (६ । १ । १९८) से अनुदात्त हैं उन में उदात्त जिन से परे हैं उन को अ-नुदात्त होता है। अध्यापक यहां आमन्त्रितानुदात्त (६ । १ । १९८) से क को उदात्त हो कर शेष सर्वस्वर से अनुदात्त हो जाते हैं। क्व यह स्वरित (६ । १ । १८५) से है उस से परे क को अनुदात्ततर होता है ॥ ४० ॥

इमंमे गङ्गे यमुने सरस्वति । माणवक जटिलकाध्यापक क गमिष्यसि । इ-मभित्यन्तोदात्तो मे इति विधानकालेऽनुदात्तस्योदात्तात्परस्य स्वरितत्वम् । गङ्गे-प्रभृतयश्चामन्त्रिता निघाताइति तेषां स्वरितात् परेषामेकश्रुतिर्भवति । माणवकप्र-भृतिषु प्रथमाक्षरमाद्युदात्तं ततः परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वं तस्मात् परेषामनुदा-त्तानामेकश्रुतिर्भवति ॥३६॥

१२९—उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥४०॥

प०—उदात्तस्वरितपरस्य ६ । १ सन्नतरः १ । १ अनु०—अनुदात्तानाम् ॥

पदा०—उदात्तस्वरितपरस्य—उदात्तश्च स्वरितश्च तौ परश्च परश्च तौ । उदात्त-स्वरितौ परौ यस्मात्तस्य । अनुदात्तानाम्=अनुदात्तस्य । सामानाधिकरण्यादे-वम् ॥

सूत्रा०—उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य सन्नतरो (अनुदात्ततरो) भवति । देवा मरुतः पृश्निमातरोऽपः । अत्र वा, रु,श्नि,पा,उदात्ताश्शेषा वर्ज्यस्वरे-णानुदात्तास्तेषामुदात्तपराणामनुदात्ततरो विधीयते । अध्यापक क । अत्रामन्त्रि-ताद्युदात्तं शिष्टस्यानुदात्तत्वं विधीयते । केति स्वरितस्तस्मिन् परे ककारस्यानुदा-त्ततरत्वं भवति ॥ ४० ॥

१३०—अपृक्तएकाल् प्रत्ययः ॥ ४१ ॥

त्त इद मे अनुदात्त अम् के अकार से एकादेश होता है वह (८ । २ । ५) से दात्त है एवं अन्तोदात्त इमं इस से मे अनुदात्त (८ । १ । २२) को स्वरित ८ । ४ । ६६) से हुआ इस से परे गङ्गे आदि अनुदात्तों को एकश्रुति होती है । माणवक में मा उदात्त है इस से ण अनुदात्त को स्वरित होकर स्वरित से परे अनुदात्तों को एकश्रुति होती है ॥ ३९ ॥

१२८—उदात्त परक वा स्वरित परक अनुदात्त को अत्यन्त अनुदात्त होता है । देवाः । यहां वा (६ । १ । १६३) उदात्त, मरुतः—रु (३ । १ । ३) पृश्नि-मातरः—श्नि (६ । २ । १) अपः—पः (६ । १ । १७१) उदात्त हैं शेष वर्ज्य स्वर (६ । १ । १५८) से अनुदात्त हैं इन में उदात्त जिन से परे हैं उन को अ-नुदात्त होता है । अध्यापक यहां आमन्त्रितायुदात्त (६ । १ । १९८) से अ को उदात्त हो कर शेष वर्ज्यस्वर से अनुदात्त हो जाते हैं । क पद स्वरित (६ । १ । १८५) से है इस के परे क को अनुदात्ततर होता है ॥ ४० ॥

इमंमे गङ्गे यमुने सरस्वति । माणवक जटिलकाध्यापक क गमिष्यसि । इ-
त्यत्रोदात्तो मे इति विधानकालेऽनुदात्तस्योदात्तपरस्य स्वरितत्वम् । गङ्गे-
त्यत्रामन्त्रिता निघाताइति तेषां स्वरितात् परेषामेकश्रुतिर्भवति । माणवकम-
त्रेपु प्रथमाक्षरमाद्युदात्तं ततः परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वं तस्मात् परेषामनुदा-
त्तानामेकश्रुतिर्भवति ॥३९॥

१२९–उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥४०॥

प०–उदात्तस्वरितपरस्य ६ । १ सन्नतरः १ । १ अनु०–अनुदात्तानाम् ॥
पदा०–उदात्तस्वरितपरस्य–उदात्तश्च स्वरितश्च तौ परश्च परश्च तौ । उदात्त-
स्वरितौ परौ यस्मात्तस्य । अनुदात्तानाम्=अनुदात्तस्य । सामानाधिकरण्यादे-
कत्वम् ॥

सूभा०–उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य सन्नतरो (अनुदात्ततरो)
भवति । देवा मरुतः पृश्निमातरोऽपः । अत्र वा, रु,श्नि,पा,उदात्ताश्शेषा वर्ज्यस्वरे-
णानुदात्तास्तेषामुदात्तपराणामनुदात्ततरो विधीयते । अध्यापक क । अत्रामन्त्रि-
तमाद्युदात्तं शिष्टस्यानुदात्तत्वं विधीयते । केति स्वरितस्तस्मिन् परे ककारस्यानुदा-
त्ततरत्वं भवति ॥ ४० ॥

१३०–अपृक्तएकाल् प्रत्ययः ॥ ४१ ॥

उदात्त इद मे अनुदात्त अम् के अकार से एकादेश होता है वह (८ । २ । ५) से
उदात्त है एवं अन्तोदात्त इमं इस से मे अनुदात्त (८ । १ । २२) को स्वरित
(८ । ४ । ६६) से हुआ इस से परे गङ्गे आदि अनुदात्तों को एकश्रुति होती है ।
माणवक में मा उदात्त है इस से ण अनुदात्त को स्वरित होकर स्वरित से परे
अनुदात्तों को एकश्रुति होती है ॥ ३९ ॥

१२९–उदात्त परक वा स्वरित परक अनुदात्त को अत्यन्त अनुदात्त होता
है । देवाः । यहां वा (६ । १ । १६३) उदात्त, मरुतः–रु (३ । १ । ३) पृश्नि-
मातरः–श्नि (६ । २ । १) अपः–पः (६ । १ । १७१) उदात्त हैं शेष वर्ज्य
स्वर (६ । १ । १५८) से अनुदात्त हैं उन में उदात्त जिन से परे हैं उन को अ-
नुदात्त होता है । अध्या० यहां आमन्त्रिताद्युदात्त (६ । १ । १९८) से अ को
उदात्त हो कर शेष वर्ज्यस्वर से अनुदात्त हो जाते हैं । क पद स्वरित (६ ।
१ । १९५) से है इस के परे क को अनुदात्ततर होता है ॥ ४० ॥

प०-एकविभक्ति १ । १ च अ० । अपूर्वनिपाते ७ । १ अनु०-समासे॥

पदा०-एकविभक्ति । एका विभक्तिर्यस्मात् । अपूर्वनिपाते=न पूर्वनिपातोऽपूर्वनिपातस्तत्र । समासे समासविग्रहे ।

सूत्रा०-समासविग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनं भवति । अपूर्वनिपाते न तु तस्य पूर्वनिपातो भवति । प्राप्तजीविकः । आपन्नजीविकः । निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः । निष्क्रान्तं कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिम् । इत्यादि । एकविभक्तीति किम्-राजकुमारी । अपूर्वनिपात इति किम्-कौशाम्बिनिरिति नेति ॥

१३४-अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ॥ ४५ ॥

प०-अर्थवत् १ । १ अधातुः १ । १ अप्रत्ययः १ । १ प्रातिपदिकम् १ । १

पदा०-अर्थवत्=अर्थोऽभिधेयोऽस्यास्तीति । अत्रार्थशब्दोऽभिधेयवचनः* अधातुः=न धातुः । अप्रत्ययः=न प्रत्ययः । न प्रत्ययान्तश्च । प्रत्ययग्रहणेन प्रत्ययान्तोऽपि गृह्यते ॥

१३३-समासविग्रह में जो नियतविभक्ति पद है वह उपसर्जन संज्ञक होता है । अपूर्वनिपात करने में अर्थात् उस का पूर्व निपात नहीं होता है । प्राप्तजीविकः । आपन्नजीविकः । यहां द्वितीयान्त के हो (२ । २ । ४) से समास होता है वह नियतविभक्ति है अतएव द्वितीयान्त जीविका शब्द उपसर्जन संज्ञक होता है पर उस का पूर्वनिपात नहीं होता है । उपसर्जन संज्ञा के जीविका शब्द को ह्रस्वादेश (१ । २ । ४८) से होता है । निष्कौशाम्बि इत्यादि में (निरादयः० २ । २ । १८) से प्रादितत्पुरुष समास होकर नियत पञ्चमी विभक्त्यन्त कौशाम्बी शब्द की उपसर्जन संज्ञा होकर पूर्वनिपात नहीं होता किन्तु उस को ह्रस्वादेश हो जाता है । उत्तरपद की अनेक विभक्ति रहने पर भी निष्कौशाम्बी पूर्ववत् पञ्चम्यन्त ही रहता है । एकविभक्ति ग्रहण क्यों किया-राजकुमारी । यहां यद्यपि षष्ठी पूर्व में षष्ठीतत्पुरुष समास है तथापि अन्य विभक्ति में भी समास की संभावना है । अपूर्वनिपात ग्रहण से कौशाम्बिनिः । ऐसा अनिष्ट प्रयोग नहीं होता है ॥ ४४ ॥

१३४-धातु प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़ अर्थवान् शब्द प्रातिपदिक संज्ञक होता है । डित्थः कपित्थः । इत्यादि में एकत्वादि अर्थ को लेकर प्रातिपदिक सं-

---

* [illegible]

प०—कृत्तद्धितसमासाः १ । ३ च । अनु० प्रातिपदिकम् ॥

पदा०—कृत्तद्धितसमासाः=कृच्च तद्धितश्च समासश्च ते । अत्र प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति कृत्तद्धिताभ्यां कृदन्ततद्धितान्तौ गृह्येते ॥

सूत्रा०—कृत्तद्धितसमासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञा भवन्ति । रामः । कामः । गार्ग्यः । वात्स्यः । राजपुरुषः । चित्रगुः । अधातुरिति पर्युदासात्कृद्ग्रहणम् । अप्रत्यय इति पर्युदासात्तद्धितग्रहणम् । समासग्रहणं नियमार्थम्–राजपुरुषः ॥ ४६ ॥

१३६–ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥४७॥

प०—ह्रस्वः । नपुंसके ७ । १ प्रातिपदिकस्य ६ । १ ॥

सूत्रा०—नपुंसकलिङ्गेऽर्थे वर्त्तमानस्याजन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वादेशो भवति । अतिरि कुलम् । अतिनु जलम् । नपुंसकइति किम्–सेनानीः । सोमपा ब्राह्मणः । प्रातिपदिकग्रहणं स्वस्वप्रधानप्रातिपदिकपरिग्रहार्थम् काण्डे । कुड्ये प्रातिपदिकग्रहणसामर्थ्यादेकादेशः पूर्वान्तवदपि न भवति ॥ ४७ ॥

१३५- कृदन्त तद्धितान्त और समास भी प्रातिपदिक संज्ञक होते हैं । राम कामः । ये घञ् (३ । ३ । १२१) प्रत्ययान्त हैं इत्यादि कृत् । गार्ग्यः । वात्स्यः (४ । १ । १०५) इत्यादि तद्धितान्त और राज्ञःपुरुषः=राजपुरुषः । षष्ठी समास (२ । २ । ८) चित्रा गावो यस्यासौ चित्रगुः । बहुव्रीहि (२ । २ । २४) इत्यादि समास प्रातिपदिक संज्ञक होते हैं पूर्व सूत्र में अधातुपर्युदास से यहां कृद् ग्रहण है । अप्रत्यय पर्युदास से तद्धित ग्रहण है । समासग्रहण नियमार्थ है अर्थात् अर्थवान् समुदायों की जो प्रातिपदिक संज्ञा हो तो समास ही की हो–राज पुरुषः । इत्यादि ॥ ४६ ॥

१३६–नपुंसकलिङ्ग में अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्वादेश होता है । रायम् तिक्रान्तमतिरि कुलम् । नावमतिक्रान्तमतिनु जलम् । इत्यादि में ह्रस्वादेश (१ । १ । ४८) से होता है । नपुंसक ग्रहण क्यों किया–सेनां नयति सेनानीः । सोमं पिबति सोमपा ब्राह्मणः । ये स्त्रिय ब्राह्मण शब्दों के विशेषण होने से पुल्लिङ्ग हैं इन को ह्रस्व न हुआ । प्रातिपदिक ग्रहण स्वस्वप्रधान प्रातिपदिकों के ग्रहण के लिये है इस से काण्डे । कुड्ये । इत्यादि एकत्वादिधर्म विशिष्ट समुदाय वाची काण्ड शब्द और कुड्य वाची कुड्य शब्द को ह्रस्वादेश नहीं होता है ॥ प्रातिपदिक ग्रहण सामर्थ्य से काण्ड+ङि । कुड्य+ङि । इन का एकादेश पूर्वान्तवत् भी नहीं होता है ॥ ४७ ॥

१३७-गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥४८॥

प०-गोस्त्रियोः ६ । २ उपसर्जनस्य ६ । १ अनु०-प्रातिपदिकस्य । ह्रस्वः ॥
पदा०-गोस्त्रियोः=गौश्च स्त्री च ते तयोः ॥

सूत्रा०-उपसर्जनगोशब्दान्तस्योपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्तस्य च प्रातिपदिकस्य ह्रस्वो भवति । शुक्लगुः । शवलगुः । अतिखट्वः । निर्वाराणसिः । उपसर्जनस्येति किम्-अतिगौः । राजकुमारी । स्त्रीग्रहणं स्वर्यिष्यते तत्र स्वरितेनाधिकारगतिर्भवति । स्त्रियामित्येवं प्रकृत्य ये विहितास्तेषां ग्रहणं विज्ञास्यते स्वरितेनाधिकारगतिर्भवतीति न दोषो भवति यद्येवं प्रत्ययग्रहणमिदं भवति । तत्र प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेर्ग्रहणं भवतीति, इह न प्राप्नोति । अतिराजकुमारिरिति सेनानीकुमारिरिति । अस्त्रीप्रत्ययेनेत्येवं तत् ॥ इति भाष्यम् ॥

वा०-ईयसो बहुव्रीहौ पुंवद्भावो वक्तव्यः । बहुश्रेयसी । रूपातिदेशोऽयम् । तेनात्र ह्रस्वो न भवति ॥ ४८ ॥

१३७-उपसर्जन गोशब्दान्त और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक को ह्रस्वादेश होता है । शुक्ला गावोऽस्य शुक्लगुः । शवला गावोऽस्य शवलगुः । खट्वामतिक्रान्तोऽतिखट्वः । वाराणस्या निर्गतो निर्वाराणसिः । इस में उपसर्जन गोशब्दान्त और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त को ह्रस्वादेश होता है । उपसर्जन ग्रहण क्यों है-अतिक्रान्ता गौः अतिगौः । यहां पूजनार्थ अतिशब्द के साथ गोशब्द के समास में समासान्त निषेध (५।४।६९) होकर अनुपसर्जन गोशब्द को ह्रस्वादेश न हुआ । तथा राज्ञः कुमारी राजकुमारी । यहां कुमारी शब्द को ह्रस्वादेश नहीं होता है ॥

भा०-इस सूत्र में स्त्रीशब्द को स्वरित चिह्नयुक्त मानेंगे और जहां स्वरित मानते हैं वहां स्वरित से अधिकार का ज्ञान होता है इस से सूत्रकारने स्त्रियाम्, इस अधिकार को करके जो प्रत्यय विधान किये हैं उन का ग्रहण जाना जायगा स्वरित से अधिकार ज्ञात होती है इस कारण स्त्रीअधिकार के प्रत्यय लेने में कोई दोष नहीं आता । प्र० यदि ऐसा है तो यह स्त्रीग्रहण प्रत्ययग्रहण सिद्ध होता है और प्रत्ययग्रहण में जिस से वह प्रत्यय परे हो तदादि का ग्रहण किया जाता है अतएव यहां ह्रस्व की प्राप्ति नहीं-राजकुमारीमतिक्रान्तः पुरुषः । अतिराजकुमारिः । सेनां नयतीति सेनानीः सेनान्यः कुमारी सेनानीकुमारी तामतिक्रान्तः पुरुषः, अतिसेनानीकुमारिः । उत्तर-यह तदादिग्रहण स्त्रीप्रत्यय विषय में अन्यत्र करता है ।

वा०-बहुव्रीहिसमास में ईयसुन् प्रत्ययान्त को पुंवद्भाव कहना चाहिये । बह्व्यः श्रेयस्यो यस्यासौ बहुश्रेयसी पुरुषः । यह रूपातिदेश है इस से इस को ह्रस्वादेश नहीं होता है ॥ ४८ ॥

१३८—लुक्तद्धितलुकि ॥ ४९ ॥

प०—लुक् । १ । १ तद्धितलुकि ७ । १ । अनु०—उपसर्जनस्य । स्त्रियाः ॥

पदा०—तद्धितलुकि—तद्धितस्य लुक् तस्मिन्। स्त्रियाः=एकदेशानुवृत्तिः स्वरितत्वात् स्त्रीप्रत्ययान्तग्रहणं च ॥

सूत्रा०—तद्धितलुकि सत्युपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुग् भवति। पञ्च देव्यो देवता अस्य पञ्चदेवः । दशदेवः । पञ्चभिर्मुद्राभिः क्रीतः पञ्चमुद्रः । बदर्याः फलं बदरम् । तद्धितग्रहणं किम्-गार्ग्याः कुलं गार्गीकुलम् । लुकीति किम्-गार्गीत्वम् । उपसर्जनस्य किम्-अवन्ती । कुन्ती ॥

तद्धितलुक्यवन्त्यादीनां प्रतिषेधः। इदमिह व्यपदेश्यं सदाचार्यो न व्यपदिशति किम्-उपसर्जनस्येति वर्त्तते न च जातिरुपसर्जनम् । इति भाष्यम् ॥

१३८—तद्धित का लुक् हो तो उपसर्जन स्त्रीप्रत्यय का लुक् होता है। पञ्च देवी देवता जिस की वह पञ्चदेव कहाता है इत्यादि में तद्धित अण् का लुक् (४।१।८८) हुए पीछे उपसर्जन देवी शब्द के ङीप् का लुक् होता है। पञ्चमुद्राओं से खरीदा जो पञ्चमुद्र कहाता है। यहां क्रीतार्थ ठक् (५ । १ । ३७) प्रत्यय और उस का लुक् (५।१।२८) होकर उपसर्जन मुद्राशब्द के टाप् प्रत्यय का लुक् इस से होता है। बदर्याः फलं बदरम् । यहां तद्धित अण् प्रत्यय का लुक् (४।३।१६३) हुए पीछे उपसर्जन बदरी शब्द के ङीप् प्रत्यय का लुक् होता है। तद्धित ग्रहण क्यों किया—गार्ग्याः कुलं गार्गीकुलम्। यहां षष्ठीतत्पुरुषसमास हुए पीछे समासान्तर्वर्त्तिनी विभक्ति का लुक् (२।४।७१) होकर उपसर्जन गार्गी शब्द के ङीप् प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। लुक् ग्रहण क्यों किया—गार्गीत्वम् । यहां भाव में त्व (५। १ । ११९) प्रत्यय हुआ उस का लुक् नहीं होता है इस से उपसर्जन गार्गी शब्द के ङीप् का भी लुक् नहीं होता । उपसर्जन ग्रहण क्यों किया—अवन्तीनां राज्ञोऽपत्यं स्त्री अवन्ती । एवं कुन्ती। यहां (वृद्धेत्कोस० ४ । १ । १६९) ञ्यङ् प्रत्यय होकर उस का लुक् (स्त्रियामवन्ति० ४ । १ । १७६) होता एवं उपसर्जन होने पर भी अवन्ती । कुन्ती के स्त्री प्रत्यय का लुक् नहीं होता है ॥

वार्त्तिककार कहते हैं कि—तद्धितलुक् होने पर अवन्त्यादिकों का प्रतिषेध चाहिये। पतञ्जलिमुनि उत्तर देते हैं कि—यह यहां व्यवहार में कहने योग्य है इस को आचार्य नहीं कहते हैं क्या—उपसर्जन पद वर्त्तमान है और जाति

त्यथापत्यलक्षणा जातिः । स्त्रीत्वयुक्ता प्राधान्येनाभिधीयते। इति कैय्यटः॥४९

१३९—इद्गोण्याः ॥ ५० ॥

प०—इत् १ । १ गोण्याः ६ । १ अनु०—उपसर्जनस्य । तद्धितलुकि ॥

सूत्रा०—तद्धितलुकि सत्युपसर्जनस्य गोणीशब्दस्येकारादेशो भवति । पञ्च-गोणीभिः क्रीतः । पञ्चगोणिः । दशगोणिः ।

इदिति योगविभागस्सूच्याद्यर्थः । पञ्चसूचिः । दशसूचिः ।

इद्गोण्यानेति वक्तव्यं ह्रस्वताहि विधीयते ।

इतिवाक्वचनेनावन्मात्रार्थं वाकृतं भवेत् ॥

गोण्याइत्त्वं प्रकरणात्सूच्याद्यर्थमथापिवा ॥ इति भाष्ये ॥ ५० ॥

१४०—लुपियुक्तवद्व्यक्तिवचने ॥ ५१ ॥

प०—लुपि ७ । १ । युक्तवत् १ । १ व्यक्तिवचने १ । २ । अनु०—तद्धितस्य

पदा०—लुपि=लुपीति लुप्तस्य प्रत्ययस्यार्थोऽत्र गृह्यते । युक्तवत्=युक्तेइव युक्तः स्वार्थस्तस्मिन्निव । सप्तम्यर्थे (५ । १ । ११६) वतिः । अथवा पदद्वयं समस्तं युक्तय-ते क्तवतुप्रत्ययान्तं प्रकृत्यर्थोभिधायितत्प्रत्ययार्थमात्मना युनक्ति तस्य युक्तवतो व्यक्तिवचने । व्यक्तिरिति पुंस्त्रीनपुंसकानां वचनमित्येकत्वद्वित्वबहुत्वानां प्राचां संज्ञे । तद्धितस्य=तद्धितलुकीत्यस्यैकदेशानुवर्त्तनम् ॥

सूत्रा०—लुबर्थे प्रकृत्यर्थ इव व्यक्तिवचने भवतः । लुबर्थे युक्तवतो व्यक्तिवचने भवतो वा । पञ्चालानां देशानां राज्ञोऽपत्यं पाञ्चालः । पाञ्चालौ । बहवः पञ्चालाः क्षत्रियास्तेषां निवासो जनपदः पञ्चालाः । एवमङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ।

पसर्जन नहीं होती है ॥ कैय्यट आचार्य कहते हैं—यहां स्त्री प्रत्यय युक्त अपत्य लक्षण जाति प्रधानता से कही जाती है ॥

१३९—तद्धितलुक् हो तो उपसर्जन गोणी शब्दको इकारादेश होता है पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पञ्चगोणिः । दशभिर्गोणीभिः क्रीतः । दशगोणिः । यहां क्रीतार्थ ठक् प्रत्यय का लुक् होकर उपसर्जनगोणी शब्दको इकारादेश होता है । सूची आदि शब्दों के अर्थ इद्गोण्याः, सूत्र में 'इत्, इतना योगविभाग करना चाहिये । पञ्चभिः सूचीभिः क्रीतः पञ्चसूचिः । दशभिः सूचीभिः क्रीतः दशसूचिः । यहां गोणी शब्द के तुल्य सूची शब्द को भी इकारादेश होता है ॥ ५० ॥

१४०—लुबर्थ में प्रकृत्यर्थवत् लिङ्ग और वचन होते हैं । अथवा यह कहना चाहिये-लुबर्थ होनेमें प्रथम युक्त जो प्रकृत्यर्थ उसके व्यक्तिवचन होते हैं । पञ्चा-

न्तीत्यत्रापत्यलक्षणा जातिः । स्त्रीत्वयुक्ता प्राधान्येनाभिधीयते । इति कैय्यटः ॥४९

१३९—इद्गोण्याः ॥ ५० ॥

प०—इत् १ । १ गोण्याः ६ । १ अनु०—उपसर्जनस्य । तद्धितलुकि ॥

सूत्रा०—तद्धितलुकि सत्युपसर्जनस्य गोणीशब्दस्येकारादेशो भवति । पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः । पञ्चगोणिः । दशगोणिः ।

इदिति योगविभागस्सूच्यायर्थः । पञ्चसूचिः । दशसूचिः ।

इद्गोण्यामिति वक्तव्यं ह्रस्वता हि विधीयते ।
इतिवाक्यवचनेतावन्मात्रार्थं वाकृतं भवेत् ॥
गोण्या इत्त्वं प्रकरणात्सूच्याद्यर्थमथापि वा ॥ इति भाष्ये ॥ ५० ॥

१४०—लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने ॥ ५१ ॥

प०—लुपि ७ । १ । युक्तवत् १ । १ व्यक्तिवचने १ । २ । अनु०—तद्धितस्य

पदा०—लुपि=लुपीति लुप्तस्य प्रत्ययस्यार्थोऽत्र गृह्यते । युक्तवत्=युक्तेइव युक्तः प्रकृत्यर्थस्तस्मिन्निव । सप्तम्यर्थे (५ । १ । ११६) वतिः । अथवा पदद्वयं समस्तं युक्तवदिति तदनुमन्यपाम्तं प्रकृत्यर्थाभिधायितत्प्रत्ययार्थमात्मना युनक्ति तस्य युक्तवतो व्यक्तिवचने । व्यक्तिरिति पुंस्त्रीनपुंसकानां वचनमित्येकत्वद्वित्वबहुत्वानां प्राचां संज्ञे । तद्धितस्य=तद्धितलुकीत्यस्यैकदेशानुवर्त्तनम् ॥

सूत्रा०—लुबर्थे प्रकृत्यर्थ इव व्यक्तिवचने भवतः । लुपर्थे युक्तवतो व्यक्तिवचने भवतो वा । पञ्चालानां देशानां राज्ञोऽपत्यं पाञ्चालः । पाञ्चालौ । बहवः पञ्चालाः क्षत्रियास्तेषां निवासो जनपदः पञ्चालाः । एवमङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ।

उपसर्जन नहीं होती है ॥ कैय्यट आचार्य कहते हैं—यहां स्त्री प्रत्यय युक्त अपत्य लक्षण जाति प्रधानता से कही जाती है ॥

१३९—तद्धितलुक् हो तो उपसर्जन गोणी शब्दको इकारादेश होता है पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पञ्चगोणिः । दशभिर्गोणीभिः क्रीतः । दशगोणिः । यहां क्रीतार्थ टक् प्रत्यय का लुक् होकर उपसर्जनगोणी शब्दको इकारादेश होता है । सूची आदि शब्दों के अर्थ इद्गोण्याः, सूत्र में 'इत्, इतना योगविभाग करना चाहिये । पञ्चभिः सूचीभिः क्रीतः पञ्चसूचिः । दशभिः सूचीभिः क्रीतः दशसूचिः । यहां गोणी शब्द के तुल्य सूची शब्द को भी इकारादेश होता है ॥ ५० ॥

१४०—लुबर्थ में प्रकृत्यर्थवत् लिङ्ग और वचन होते हैं । अथवा यह कहना चाहिये—लुबर्थ होनेमें प्रथम युक्त जो प्रकृत्यर्थ उसके व्यक्तिवचन होते हैं । पञ्चाल देशों के राजा का अपत्य एक वा दो पाञ्चाल और बहुत पञ्चाल क्षत्रिय क-

१३८—लुक्तद्धितलुकि ॥ ४९ ॥

प०—लुक् १ । १ तद्धितलुकि ७ । १ । अनु०—उपसर्जनस्य । स्त्रियाः ॥

पदा०—तद्धितलुकि—तद्धितस्य लुक् तस्मिन्। स्त्रियाः=एकदेशानुवृत्तिः संरितत्वात् स्त्रीप्रत्ययान्तग्रहणं च ॥

सूत्रा०—तद्धितलुकि सत्युपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुग् भवति। पञ्च देव्यो देवता अस्य पञ्चदेवः । दशदेवः । पञ्चभिर्मुद्राभिः क्रीतः पञ्चमुद्रः । बदर्य्याः फलं बदरम् । तद्धितग्रहणं किम्-गार्ग्याः कुलं गार्गीकुलम् । लुकीति किम्-गार्गीत्वम् । उपसर्जनस्य किम्-अवन्ती । कुन्ती ॥

तद्धितलुक्यवन्त्यादीनां प्रतिषेधः । इदमिह व्यपदेश्यं सदाचार्य्यो न व्यादिशति किम्-उपसर्जनस्येति वर्त्तते न च जातिरुपसर्जनम् । इति भाष्यम् ॥

१३८—तद्धित का लुक् हो तो उपसर्जन स्त्रीप्रत्यय का लुक् होता है। पञ्च देवी देवता जिस की वह पञ्चदेव कहाता है इत्यादि में तद्धित अण् का लुक् (४।१।८८) हुए पीछे उपसर्जन देवी शब्द के ङीप् का लुक् होता है। पञ्चमुद्राओं से खरीदा जो पञ्चमुद्र कहाता है। यहां क्रीतार्थ ठक् (५ । १ । ३७) प्रत्यय और उस का लुक् (५।१।२८) होकर उपसर्जन मुद्राशब्द के टाप् प्रत्यय का लुक् इस से होता है। बदर्य्याः फलं बदरम् । यहां तद्धित अण् प्रत्यय का लुक् (४।३।१६३) हुए पीछे उपसर्जन बदरी शब्द के ङीप् प्रत्यय का लुक् होता है। तद्धित ग्रहण क्यों किया-गार्ग्याः कुलं गार्गीकुलम् । यहां षष्ठीतत्पुरुषसमास हुए पीछे समासान्तर्वर्त्ती विभक्ति का लुक् (२।४।७१) होकर उपसर्जन गार्गी शब्द के ङीप् प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। लुक् ग्रहण क्यों किया-गार्गीत्वम् । यहां भाव में त्व (५ । १ । ११९) प्रत्यय हुआ उस का लुक् नहीं होता है उस से उपसर्जन गार्गी शब्द के ङीप् का भी लुक् नहीं होता । उपसर्जन ग्रहण क्यों किया—अवन्तेः राज्ञोऽपत्यं स्त्री अवन्ती । एवं कुन्ती। यहां (वृद्धेत्कोस० ४ । १ । १६९) ञ्यङ् प्रत्यय होकर उस का लुक् (स्त्रियामवन्ति० ४ । १ । १७६) होता एवं उपसर्जन होने पर भी अवन्ती । कुन्ती के स्त्री प्रत्यय का लुक् नहीं होता है ॥

वार्त्तिककार कहते हैं कि-तद्धितलुक् होने पर अवन्त्यादिकों का प्रतिषेध कहना चाहिये। महाभाष्यकार उत्तर देते हैं कि-यह यहां व्यवहार में कहने के योग्य है इस को आचार्य नहीं कहते हैं क्या-उपसर्जन पद वर्त्तमान है और जाति

पदा०—अजातेः=अविद्यमानो जातिर्नामार्थो यस्मिंस्तस्य न विद्यते । जाति-रूपोऽर्थो यस्मिन्निति यावत् ॥

सूत्रा०—जातिवर्जितानां लुबर्थविशेषणानां युक्तवल्लिङ्गवचनानि भवन्ति । पञ्चालाः रमणीयाः । वङ्गाः रमणीयाः । अङ्गा बहुव्रीहयः । गोदौ रमणीयौ । अजातेरिति किम्—पञ्चालाः जनपदः । गोदौ ग्रामः । ग्रामजनपदशब्दौ जातिव-चनौ । जात्यर्थस्य चायं युक्तवद्भावप्रतिषेधस्तेन जातेर्विशेषणानामपि युक्तवद्भावो न भवति । पञ्चालाः जनपदो रमणीयो बह्वन्नः । गोदौ ग्रामो रमणीयो बह्वसः ।

वा०—हरीतक्यादिषु व्यक्तिः । हरीतक्यादिषु व्यक्तिरेव युक्तवद् भवति । हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः । खलतिकादिषु वचनम् । खलतिकादिषु वचन-मेव युक्तवद् भवति । खलतिकस्य पर्वतस्यादूरभवानि वनानि खलतिकं वनानि । मनुष्यलुपि प्रतिषेधः । मनुष्यलक्षणेऽपि लुबर्थविशेषणानां लिङ्गसंख्ये न स्तः । लुबन्तस्य तु भवति । यथा अभिरूपः ॥५२॥

ला रमणीयाः । यहां रमणीयानां पञ्चालानां निवासो जनपदः, इस विग्रह में जैसे पूर्वसूत्र से युक्तवद्भाव होने में पञ्चाल शब्द को पुंस्त्व और बहुवचन होता है वैसे रमणीयशब्द को भी पुंस्त्व और बहुवचन होता है । ऐसे ही रमणीया-नां बह्वन्ना निवासो जनपदः । बहुव्रीहीणामङ्गानां निवासो जनपदः । रमणी-ययोर्गोदयोर्निवासो जनपदः । इत्यादि में व्यक्तिवचन युक्तवत् होते हैं । अजा-तिग्रहण क्यों किया—पञ्चालाः जनपदः । यहां जनपद जातिवाचक है । गोदौ-ग्रामः । यहां ग्रामशब्द जातिवाचक है । इस को युक्तवद्भाव नहीं होता है । जात्यर्थ का ही यह युक्तवद्भाव प्रतिषेध है । इस से जाति के जो विशेषण हैं उन को भी युक्तवद्भाव नहीं होता है जैसे पञ्चाला जनपदो रमणीयो बह्वन्नः । गोदौ ग्रामो रमणीयो जनपदः । इत्यादि में जो जनपद और ग्रामशब्द के वि-शेषण हैं उन को भी निषेध होता है ॥

वा०—हरीतक्यादिकों में व्यक्ति ही युक्तवत् होती है । हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः । यहां फल शब्द के नपुंसक होने पर भी तद्वाचक हरीतकी शब्द स्त्रीलिङ्ग ही रहता है । खलतिकादिकों में वचन ही युक्तवत् होता है । खल-तिकं वनानि । यहां वन के बहुत्व होने पर भी खलतिक के एकत्व को देखि ए-कत्व ही होता है । मनुष्यार्थ में लहित का लुप् हो तो युक्तवद्भाव का प्रतिषेध होना चाहिये चञ्चेव अभिरूपो मनुष्यः । चञ्चाभिरूपः । यहां संज्ञा में विहित (५।३।९७) कन् का लुप् (५।३।९८) होने पीछे अभिरूप विशेषण को युक्त-वद्भाव नहीं होता है ॥ ५२ ॥

१४२–तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् ॥ ५३ ॥

प०–तत् १ । १ अशिष्यम् १ । १ संज्ञाप्रमाणत्वात् ५ । १ अनु०–युक्तवत्

पदा०–संज्ञानां प्रमाणं संज्ञाप्रमाणं तस्य भावस्तस्मात् । युक्तवत्=युक्तवद्भाव लक्षणमिति यावत् ॥

सूत्रा०–संज्ञाप्रमाणत्वात्तद्युक्तवद्भावलक्षणमशिष्यं न शासनीयम् । संज्ञा प्रमाणत्वं लोकव्यवहारएव प्रतिपादको न तदंशे शास्त्रव्यापारः । यथा दारादि शब्दानां शास्त्रीयलिङ्गवचनविशिष्टानां स्वार्थबोधकता तथापञ्चालादिशब्दाना मपि न ते पुनःप्रतिपाद्याः । तद्यथा–दाराः । आपः । सिकताः । वर्षाः । एवम् पञ्चालाः । वरणाः । इत्यादयः ॥ ५३ ॥

१४२–लुब्योगाप्रख्यानात् ॥ ५४ ॥

प०–लुप् १ । १ योगाप्रख्यानात् ५ । १ ॥ अनु०–अशिष्यम् ॥

पदा०–योगाप्रख्यानात्=न प्रख्यानमप्रख्यानं योगस्याप्रख्यानं योगोऽप्रख्या नमप्रतीतिस्ततः ॥

सूत्रा०–योगाप्रख्यानाल्लुबप्यशिष्यो न शासनीयः । पञ्चालादिशब्दास्स्व भावतो देशविशेषार्थबोधका न तेभ्यो निवासादिष्वर्थेषु प्रत्ययोत्पत्तिकरणन्त लुप्करणमशिष्यम् ॥ ५४ ॥

१४२–संज्ञा के प्रमाण होने से पूर्वोक्त युक्तवद्भाव सूत्र कहने योग्य नहीं है । संज्ञाओंका प्रमाण होना अर्थात् लोक व्यवहार ही संज्ञाओंका प्रतिपादक है इस अंश में शास्त्र व्यापार नहीं है । जैसे कि शास्त्रीय लिङ्गवचन विशिष्ट दारा दि शब्दों की स्वार्थबोधकता है वैसे पञ्चालादि शब्दों की भी स्वार्थ बोधकता लोकसिद्ध है वे पुनः प्रतिपाद्य नहीं हैं । दाराः । आपः । सिकताः । वर्षाः । इ त्यादि शब्द अपर लिङ्ग वचन युक्त होते हुए भी अन्य लिङ्ग वचन युक्त व्यक्ति यों के वाचक हैं । दारशब्द पुंल्लिङ्ग बहुवचनान्त स्त्री का वाचक । अप्शब्द बहुवचनान्त स्त्रीलिङ्ग जलका वाचक, सिकता शब्द बहुवचनान्त स्त्री लिङ्ग रेणु का वाचक । और वर्षा शब्द बहुवचनान्त स्त्रीलिङ्ग वर्षाऋतु का वाचक है । ऐसे ही पञ्चालाः वरणाः । इत्यादि बहुवचनान्त और पुल्लिङ्ग देश वाचक हैं ॥५३॥

१४३–योग का अप्रख्यान अप्रसिद्धि होने से लुप् भी अशिष्य है कहने योग्य नहीं है । पञ्चालादि शब्द स्वभाव से देश विशेष अर्थ के बोधक हैं किन्तु निवासादि अर्थों में तद्धित प्रत्यय की उत्पत्ति होकर उसका लुप् होना संज्ञाओं का कारण नहीं है । इस कारण लुप् करना अशिष्य है ॥ ५४ ॥

१४४–योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात् ॥ ५५ ॥

प०–योगप्रमाणे ७ । १ । च । तदभावे ७ । १ अदर्शनम् १ । १ स्यात् । अनु०–संज्ञानाम् ॥

पदा०–योगप्रमाणे=योगस्यावयवस्य प्रमाणं तस्मिन् । तदभावे=तस्याभाव-स्तदभावस्तस्मिन् । अदर्शनम् न दर्शनम् ॥

सूभा०–योगस्यावयवार्थस्य प्रमाणे सति तस्याभावे संज्ञानामदर्शनं स्यात् । यदि क्षत्रियबोधकः पञ्चालादिशब्दो देशे योगस्यावयवार्थस्य प्रमाणं प्रसिद्धिकारणस्यात्तर्हि तदभावे क्षत्रियसंबन्धाभावे देशरूपेऽर्थे पञ्चालादिशब्दस्यादर्शनमप्रयोगस्यात्तस्य क्षत्रियसंबन्धमन्तरापि जनपदेषु पञ्चालादिशब्दो दृश्यतएवातो नायं योगनिमित्तकः किन्तु रूढिरूपेण तत्र प्रवृत्तः । ननु संप्रतिक्षत्रियसबन्धाऽभावेऽपि भूतपूर्वक्षत्रियसंबन्धमादाय प्रयोगो भविष्यति नैवम् । गौणत्वापत्तेः । नचेमे गौणाः । पदान्तरमन्तरेणापि प्रतीतेः । तस्माज्जनपदेष्वपि पञ्चालादिशब्दा रूढिरूपेणैव तत्र प्रवृत्ताः ॥ ५५ ॥

१४५–प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् ॥५६॥

१४४–योग अर्थात् अवयवार्थ का प्रमाण हो तो उस योग के अभाव में पञ्चालादि संज्ञाओं का अदर्शन हो । अर्थात् जो क्षत्रिय बोधक पञ्चालादि शब्द देश अर्थ में अवयवार्थ ज्ञान कराने वाला हो तो उस अवयवार्थ के अभाव में अर्थात् क्षत्रिय संबन्ध का अभाव जिस में है ऐसे देशरूप अर्थ में पञ्चालादि शब्द का अदर्शन अप्रयोग हो सो नहीं होता किन्तु क्षत्रिय संबन्ध के बिना भी जनपद अर्थों में पञ्चाल आदि शब्द देखा जाता है इस से पञ्चालादि शब्द योग निमित्तक नहीं है किन्तु रूढि रूप से जनपद अर्थों में प्रवृत्त है । यहां तर्क यह है कि—अब क्षत्रिय संबन्ध के अभाव में भी प्रथम हुए क्षत्रिय संबन्ध को लेके जनपद अर्थों में पञ्चालादि शब्दों का प्रयोग होजायगा सो ऐसा नहीं क्योंकि गौणत्व की प्राप्ति होगी अर्थात् जो पञ्चालादि शब्द क्षत्रिय वाचक थे वेही देशवाचक हुए तो पञ्चालादि शब्द गौण होंगे क्योंकि स्वार्थ परित्याग किये हुए शब्द गौण कहाते हैं तथा तदर्थबोधक और शब्द के बिना भी जनपद अर्थों में पञ्चालादि शब्दों की प्रतीति होती है । अतएव जनपदों में भी पञ्चालादि शब्द रूढि रूप से ही प्रवृत्त हैं ॥ ५५ ॥

प०—प्रधानप्रत्ययार्थवचनम् १ । १ अर्थस्य ६ । १ अन्यप्रमाणत्वात् ५ । अनु०—अशिष्यम् ॥

पदा०—प्रधानप्रत्ययार्थवचनम्= प्रधानं च प्रत्ययश्च प्रधानप्रत्ययौ, अर्थस्य वचनमर्थवचनम् । प्रधानप्रत्ययाभ्यामर्थवचनम् । अन्यप्रमाणत्वात्=अन्यः प्रमाणं यस्य स अन्यप्रमाणं तस्य भावस्तस्मात् ॥

सूत्रा०—अर्थस्यान्यप्रमाणत्वात्प्रधानप्रत्ययार्थवचनमशिष्यं न शासनीयम् । शब्दवाच्यस्यान्यस्य शास्त्रापेक्षया लोकः प्रमाणम् । लोकत एवार्थावगतेः शब्दैरर्थाभिधानं स्वाभाविकं न तत्पारिभाषिकमशक्यत्वात् । अनधीतव्याकरणोऽपि वचनमात्रे तदर्थं प्रतिपद्यते । ग्रामं गच्छेत्युक्ते स ग्राममेव गन्तुमुत्सहते न नगरमिति अतः पूर्वाचार्यैर्यत् परिभाषितम्—प्रधानोपसर्जने प्रधानार्थं सह ब्रूतः । प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतः । इति तद्द्वयमनर्थकम् ॥ ५६ ॥

१९६—कालोपसर्जने च तुल्यम् ॥ ५७ ॥

प०—कालोपसर्जने १ । २ । ७ । १ प । तुल्यम् १ । १ अनु०—अशिष्यम् अर्थस्य । अन्यप्रमाणत्वात् ॥

पदा०—कालोपसर्जने=कालश्चोपसर्जनं च ते । यद्वा कालश्चोपसर्जनं च तयोस्समाहारस्तस्मिन् । तुल्यम्=समानम् । तुल्यमिति हेत्वनुकर्षणार्थः ।

सूत्रा०—तुल्यं पूर्ववदर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् कालोपसर्जने चाशिष्ये । यद्वा कालोपसर्जने च यद्वचनं तच्च तुल्यं यथार्थस्यान्यप्रमाणत्वात् प्रधानप्रत्ययार्थवचन

१९५—अर्थ का अन्यप्रमाण होने से प्रधानप्रत्ययार्थवचन अशिष्य है शिक्षा करने योग्य नहीं है । अर्थ (शब्द के वाच्य पदार्थ) का शास्त्र की अपेक्षा अन्य (दूसरा) लोक प्रमाण है क्योंकि लोक से ही अर्थ का बोध होता है। शब्दों से अर्थ का कहना स्वाभाविक है किन्तु वह पारिभाषिक-परिभाषा योग्य नहीं है । अशक्य होने से । जिसने व्याकरण नहीं पढ़ा (सुनने से संस्कृत शब्दों को धारण कर लिया) वह भी वचन कहने से उस के अर्थ को प्राप्त होता है "ग्रामं गच्छ" ऐसा कहने पर वह ग्राम के ही जाने का उत्साह करता है नगर के जाने का नहीं इस से पूर्वाचार्यों के परिभाषारूप वाक्य अर्थात् "समास में प्रधान मुख्य और उपसर्जन गौण पद मिल के प्रधानार्थ को कहते हैं । प्रकृति और प्रत्यय एक साथ अर्थ को कहते हैं" ये दोनों व्यर्थ हैं ॥५६॥

१९६—तुल्य अर्थात् अर्थ को लोक प्रमाण होने से काल और उपसर्जन भी अशिष्य हैं । अथवा यह कहना चाहिये—काल और उपसर्जन के निमित्त जो

परत्वात्पुंसकं शिष्यते । तच्च देवदत्तश्च=ते । अद्वन्द्वतत्पुरुषविशेषणानाम् । कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । पूर्वशेषः खल्वपि दृश्यते । स च यश्च=तौ । इति भाष्यम् ॥ ७२ ॥

१६२–ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ ७३ ॥

प०–ग्राम्यपशुसङ्घेषु ७ । ३ अतरुणेषु ७ । ३ स्त्री १ । १ । अनु० एकशेषः । एकविभक्तौ । तल्लक्षणः । चेत् । एव । विशेषः ॥

पदा०–ग्राम्यपशुसङ्घेषु=ग्रामे भवाः ग्राम्याः (४ । २ । ९३) भवार्थे यः । ग्राम्याश्च ते पशवस्तेषां सङ्घास्तेषु । अतरुणेषु=न तरुणेषु ।

सूत्रा०–एकविभक्तौ परतोऽतरुणेषु ग्राम्यपशुसङ्घेषु स्त्री शिष्यते तल्लक्षण एव विशेषश्चेत् । पुमान्स्त्रियेत्यस्यापवादः । गाव इमाः । अजा इमाः । ग्राम्येति किम्–रुरव इमे । पशुग्रहणं किम्–ब्राह्मणा इमे । सङ्घेषु किम्–एतौ गावौ । अतरुणेषु किम्–वत्सा इमे । बर्करा इमे ॥७३॥

अनेकशफेष्विति वक्तव्यम् । इह माभूत्–अश्वा इमे । गर्दभा इमे । इति भाष्यम् । इति प्रथमाध्याये द्वितीयश्चरणः ॥

होता है जैसे–तच्च देवदत्तश्च=ते । द्वन्द्व और तत्पुरुष के विशेषणों का पुंनपुंसक एकशेष नहीं होता है जैसे–कुक्कुटमयूर्याविमे । यहां इसमें यह स्त्रीलिङ्ग एकशेष हुआ । मयूरीकुक्कुटाविमौ । यहां पुल्लिङ्ग एकशेष हुआ ॥ कहीं पूर्वशेष भी होता है । सच यश्च=तौ । इत्यादि शिष्टप्रयोगों में । यह सब भाष्य में स्पष्ट है ॥७२॥

१६२–एक विभक्ति के परे अतरुण ग्राम्य पशुओं के समुदायों में स्त्री एकशेष होती है तल्लक्षण ही विशेष हो तो । "पुमान्स्त्रिया" इसका यह अपवाद है । गावइमे । गावश्च-इमास्ताः । गावइमाः । यहां पुंल्लिङ्ग गो शब्दका लोप होजाता है । अजाइमाः । यहां भी स्त्रीलिङ्ग शेष हुआ । ग्राम्य ग्रहण क्यों किया "रुरवइमे ।" यहां पुंल्लिङ्ग रुरुशब्द का एकशेष होता है । मृगोंकी एक रुरुजाति है जो वनमें रहा करते हैं । पशु ग्रहण क्यों किया–ब्राह्मणाइमे यहां–"ब्राह्मणश्च ब्राह्मणीच" यहां ब्राह्मण शब्द शेष रहता है । सङ्घ ग्रहण क्यों किया–एतौ गावौ । यहां दोही हैं । अतरुण ग्रहण क्यों किया–वत्साइमे । बर्कराइमे । यहां बछड़े बछड़ियों और बकरे बकरियों में स्त्री का एकशेष नहीं होता है ॥७३॥

भाष्य में कहा है–अनेक खुर वाले पशुओं में स्त्री को एक शेष होता है ऐसा कहना चाहिये । अश्वाइमे । गर्दभाइमे । यहां स्त्री का एकशेष नहीं क्योंकि घोड़े गदहे एकही खुर वाले होते हैं । इन के खुर चिरे नहीं इसमें यह अनेक खुर वाले नहीं हैं । यह प्रथमाध्याय में दूसरा पाद पूरा हुआ ॥

१६४–उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ २ ॥

प०–उपदेशे ७।१ अच् १।१ अनुनासिकः १।१ इत् १।१ संज्ञासूत्रम्। पदा०–उपदेशे=उपदिश्यतेऽनेनेत्युपदेशस्तस्मिन्। उपदेशश्चात्र धातुप्रातिपदिकप्रत्ययनिपातागमादेशरूपाणि। अनुनासिकः=नासिकामनुगतः।

सूत्रा०–उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञको भवति। आद्योच्चारणमुपदेशः। गुरोः प्रापणमुपदेशः। एध। सु। कुक्। टुक्। नुट्। इत्यादिषूपदेशविज्ञानादकारादयोऽनुनासिका इतो भवन्ति। एधते। इत्यादि। उपदेशः किम्–अभ्रआँ अपः। अच् किम्–पामा। पामानौ। पामानः। मनिनो मकारस्य मा भूत्। अनुनासिकः किम्–रामेषु। घटेषु। इत्प्रदेशा आदितश्चेत्येवमादयः ॥ २ ॥

१६५–हलन्त्यम् ॥ ३ ॥

प० हलन्त्यम् १।१। अथवा–हल् १।१ अन्त्यम् १।१ अनु०–उपदेशे। इत्।

ह०–वह यह वार्त्ती की युक्ति है पचादिक्रिया से भवति क्रिया की कर्तृसाधिका होती है। यद्यपि यह यहां कहसकते हैं जहां और और क्रिया हैं जब वही क्रिया हो वहां कैसे। भवेदपि भवेत्। हो भी हो। यहां अर्थ भाव भेद है क्योंकि–काल और साधन भेद से उक्त प्रयोग में जो प्रथम «भवेत्» शब्द कहा गया उस से दूसरा «भवेत्» दूसरे काल की अपेक्षा से कहागया। तथा साधन भेद भी दोनों क्रियाओं की अपेक्षा से हो जाता है अतएव दोनों क्रियाओं में अन्योन्य भाव है ॥ १ ॥

१६४–उपदेश में जो अनुनासिक अच् वह इत्संज्ञक होता है। आद्य प्रोच्चारण (महर्षियों का जो प्रथम वचन) उपदेश कहाता है। गुरुओं से जिस की प्राप्ति कराता है वह उपदेश कहाता है। एध० इत्यादिकों में उपदेश विधान से अनुनासिक अकारादि इत् संज्ञक होते हैं। इत् संज्ञा होकर उन अकारादिकों का लोप होता और–एधते। इत्यादि प्रयोग बनते हैं। उपदेश पद क्यों किया–अभ्रआं अपः। यहां आकार को अनुनासिक (६।१।१२६) होता वह अनुपदेश है इस से उस की इत् संज्ञा नहीं होती है। अच् ग्रहण क्यों है–पामान। इत्यादि में मनिन् के नकार की इत् संज्ञा नहीं होती है। अनुनासिक ग्रहण क्यों किया–रामेषु। इत्यादि में षु के उकार की इत् संज्ञा नहीं होती। इत् प्रदेश (आदितश्च) इत्यादि हैं ॥ २ ॥

१६७—आदिर्ञिटुडवः ॥५॥

प०-आदिः १ । १ ञिटुडवः १ । ३ अनु०-उपदेशे । इत् ॥

पदा०-ञिटुडवः=ञिश्च टुश्च डुश्च ते ॥

सूत्रा०-उपदेशे वर्त्तमाना आद्या ञिटुडव इत्सञ्ज्ञका भवन्ति । ञिः-मिन्नः क्ष्विन्नः । टुः-श्वयथुः । डुः-पवित्रमम् । उपदेशे किम्—ञिकारीयति । आदिः किम् कण्डूयति ॥ ५ ॥

१६८—षः प्रत्ययस्य ॥६॥

प०—षः १ । १ प्रत्ययस्य ६ । १ अनु०-इत् । आदिः ॥

सूत्रा०-प्रत्ययस्यादिष्ष इत्संज्ञो भवति । दाक्षायणी । नर्त्तकी । प्रत्ययस्य किम्—षडिकः । आदिः किम्—अविषः । महिषः ॥

१६९—चुटू ॥७॥

प०—चुटू १ । २ अनु० इत् । आदिः । प्रत्ययस्य ॥

सूत्रा०—प्रत्ययस्याद्यौ चुटू इत्सञ्ज्ञकौ भवतः । चः-कौञ्जायन्यः । [illegible] यादेशः । जः-रामाः । अस्यानन्तादेशो भवति । [illegible] । टः—[illegible]

१६७—उपदेश में वर्त्तमान आदि ञि टु डु इत् संज्ञक होते हैं । ञिः—मिन्नः यहां ञिमिदा धातु के और । क्ष्विन्नः । यहां ञिक्ष्विदा के ञिकार की इत् संज्ञा होती है । टु-श्वयथुः । यहां टुओश्वि धातु के टु की इत् संज्ञा होती है । डु- पवित्रमम् । यहां डु की इत् संज्ञा होती है । उपदेश ग्रहण क्यों है-ञिकारीयति यहां उपदेश का ञि नहीं है । आदि ग्रहण क्यों किया-कण्डूयति । यहां यङ् मध्य में है । इस से इत् संज्ञा न हुई ॥ ५ ॥

१६८—प्रत्ययादि षकार इत् संज्ञक होता है । दाक्षायणी । यहां ष्फ प्रत्यय (४ । १ । १७) और इस के षकार की इत् संज्ञा होकर ङीष (४ । १ । ४१) प्रत्यय हो जाता है । नर्त्तकी । यहां ष्वुन् (३ । १ । १४५) होकर षकार की इत् संज्ञा हुई फिर षित् से ङीष् प्रत्यय होता है । प्रत्यय ग्रहण क्यों किया- षडिकः । यहां ष की इत् संज्ञा नहीं होती है । आदि ग्रहण क्यों है- अविषः । महिषः । यहां «अविमह्योष्टिषच्» इस उणादि सूत्र से टिषच् प्रत्यय होता है उस का मध्यवर्ती षकारलोप नहीं होता है ॥

१६९-प्रत्यय के आदि चवर्ग और टवर्ग इत् संज्ञक होते हैं । चः-कौञ्जायन्यः ।

१५९–पिता मात्रा ॥७०॥

०-पिता १।१ मात्रा ३।१ अनु०-एकशेषः । एकविभक्तौ । अन्यतरस्याम् ॥

सूत्रा०-एकविभक्तौ परतो मातृशब्देन सहोक्तौ पितृशब्दश्शिष्यतेऽन्यतर-स्याम् । माता च पिता च=पितरौ, मातापितरौ वा ॥७०॥

१६०–श्वशुरः श्वश्र्वा ॥७१॥

०-श्वशुरः १।१ श्वश्र्वा ३।१ अनु०-एकशेषः । एकविभक्तौ । अन्यतरस्याम् ॥

सूत्रा०-एकविभक्तौ परतः श्वश्र्वा सहोक्तौ श्वशुरशब्दः शिष्यतेऽन्यतरस्याम् श्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ, श्वश्रूश्वशुरौ वा ॥७१॥

१६१–त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥ ७२ ॥

–त्यदादीनि १।३ सर्वैः ३।३ नित्यम् २।१ अनु०-एकशेषः । एकविभक्तौ ।

पदा०-त्यदादीनि=त्यदादयो येषां तानि ॥

सूत्रा०-एकविभक्तौ सर्वैस्सहोक्तौ त्यदादीनि नित्यं शिष्यन्ते । स च देवदत्त-श्चौ । यश्च यज्ञदत्तश्च=यौ ॥ कौ ॥ त्यदादीनां मिथो परपरं शिष्यते श-रविप्रतिषेधात् । स च यश्च=यौ ॥ त्यदादितश्शेषे पुंनपुंसकतो लिङ्गवच-नि । सा च देवदत्तश्च=तौ ॥ तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्तश्च तानि । पुंनपुंसकयोस्तु

१५९–एक विभक्ति के परे मातृ शब्द के साथ उक्ति में पितृशब्द एकशेष ल्प करके होता है । माता च पिता च=पितरौ, मातापितरौ वा । यहां शब्द का पाक्षिक एकशेष होता है ॥ ७० ॥

१६०–एकविभक्ति के परे श्वश्रू शब्द के साथ उक्ति में श्वशुरशब्द का एक-विकल्प करके होता है । श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ, श्वश्रूश्वशुरौ वा । यहां शुरशब्द का पाक्षिक एकशेष होता है ॥ ७१ ॥

१६१–एक विभक्ति के परे सब के साथ कहने में त्यदादिक एकशेष होते । सचदेवदत्तः इत्यादि में त्यदादि शेष रहते हैं औरों की निवृत्ति होती । त्यदादिकों की परस्पर एकसाथ उक्ति में जो पर है वह एक शेष होता शब्द परविप्रतिषेध से । सच यद्=यौ । यहां यद् शब्द पर है उस का एकशेष ॥ त्यदादिकों के शेष होने में पुंलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग से लिङ्गवचन ते हैं जैसे-साच देवदत्तश्च=तौ । यहां सा यह तद् शब्द स्त्रीलिङ्ग है पर दूसरे दत्तशब्द के पुंलिङ्ग को देख पुंलिङ्ग ही होता है । एवं तानि यह न-कलिङ्ग हुआ [illegible] नपुंसकलिङ्ग इन में पाठ से अर्थात् त्यदादी-[illegible] में नपुंसक शब्द पर होने से नपुंसक का एकशेष

हरणम् । शः—भवति । भवतः । क्तः—कृतः । कृतवान् । खः—जनमेजयः । ग-जिष्णुः । भूष्णुः । घः—भासुरः । मेदुरः । ङः—मुक्तः । मुक्तिः । अतद्धितेति किम्—चूडालः । लोमशः । व्यूढोरस्कः ॥ ८ ॥

१७१—तस्य लोपः ॥ ९ ॥

प०—तस्य ६ । १ लोपः १ । १ अनु० । इत् ॥

सूत्रा०—तस्येत्संज्ञकस्य लोपो भवति । गमः । गार्ग्यः । इदित्यनुवर्त्तमाने पुनस्तद्ग्रहणं सर्वलोपार्थम् । तेन ञिटुडूनामन्त्यलोपो न ॥

प०—अनेकान्ता अनुबन्धाः । अवदातं मुखम् ॥ एकान्ता अनुबन्धाः ॥ कुण्डानि । वनानि ॥ किं पुनरत्र न्याय्यम् । एकान्ता इत्येव न्याय्यम् । इति भाष्यम् ॥ ९ ॥

१७२—यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ॥ १० ॥

प०—यथासंख्यम् १ । १ अनुदेशः १ । १ समानाम् ६ । ३ स्वरितेनेत्याकर्षेण परस्मात् ॥

पदा०—यथासंख्यम्=संख्यामनतिक्रम्य । संख्याशब्दोऽत्र क्रमार्थः । यथासंख्यं यथाक्रममिति यावत् । अनुदेशः=अनुदिश्यते पश्चादुच्चार्यत इत्यनुदेशः । समानाम् समसंख्यानाम् । परिभाषेयम् ॥

क्तः—कृतः । कृतवान् । यहां क्त (३ । २ । १०२) प्रत्यय होकर ककार की इत् संज्ञा होती है । जनमेजयः । इत्यादि में खश् (३ । २ । २८) जिष्णुः, भूष्णुः । यहां ग्स्नु (३ । २ । १३९) प्रत्यय । भासुरः । मेदुरः । यहां घुरच् (३ । २ । १६१) प्रत्यय । मुक्तः । मुक्ति । यहां क्त क्ति प्रत्यय होते हैं । अतद्धितग्रहण क्यों किया—चूडालः । यहां लच् (५ । २ । ९६) प्रत्यय होता उस के लकार की इत् संज्ञा नहीं होती । लोमशः । यहां श (५।२।१००) प्रत्यय की इत्संज्ञा और व्यूढोरस्कः । यहां कप् (५ । ४ । १५१) प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा नहीं होती है ।

प०—अनुबन्ध अनेकों के समीपवर्त्ती होते हैं अर्थात् एक के अवयव नहीं होते हैं । अवदातम् मुखम् । यहां अनेकान्त पक्ष मानि दैप् के ऐकार को आकार (६।१।४५) आदेश होकर दाप् हो जाता दाप् की घुसंज्ञा का निषेध होकर घुसंज्ञा प्रयुक्त कार्य (७।४।४६) नहीं होता है ॥ अनुबन्ध एकान्त (एक के अवयव) भी होते हैं । कुण्डानि । इत्यादि में जस् के स्थान में जो (शि) आदेश होता है उस में जो शकार है यदि वह उसका अवयव न माना जाय तो शि आदेश को शित् नहीं मान सकते न वह सर्वादेश हो सकता है ॥ फिर इन अनुबन्धों में न्याय युक्त कौन पक्ष है । एकान्त पक्ष ही न्याय युक्त है । यह भाष्य में कहा है ॥९॥

अथ प्रथमाध्यायस्य तृतीयपादारम्भः ॥

१६३–भूवादयो धातवः ॥ १ । ३ । १

प०—भूवादयः १ । ३ धातवः १ । ३ संज्ञासूत्रम् ।

पदा०—भूवादयः=भूरादिर्येषान्ते । यद्वा—भूश्च वाश्च भूवौ । आदिश्चादि-
दी भूवादी येषान्ते भूवादयः । भूप्रकारकाः वाप्रकारकाः क्रियावचना
ते यावत् । धातवः=धातुश्च धातुश्च धातुश्च ते ॥

सूत्रा०—क्रियावचना भूवादयो धातुसंज्ञा भवन्ति । भू—भवति । एध—
धते । स्पर्द्ध—स्पर्द्धते । इत्यादि । क्रियावचनाः किम्—विकल्पार्थवाशब्दस्य
भूत् । भूवादयः किम्—आणवयति । यदि पुनर्भाववचनो धातुरित्येवं लक्षणं
त्यते ।

पं पुनर्ज्ञायते भाववचनाः पचादयइति । यदेतेषां भवतिना सामानाधिकरण्यम् ।
वति पचति । भवति पठति । भवत्यपाक्षीदिति । का तर्हीयं वाचोयुक्तिः । एषै-
। वाचोयुक्तिः । पचादयः क्रिया भवतिक्रियायाः कर्त्र्यो भवन्ति । यद्यपि ता-
भिलक्ष्यते यथाऽन्या चान्या च क्रिया । यत्र सत्युक्रिया तत्र कथम् । भवेदपि
वेत्स्यादपि स्यादिति । अत्राऽप्यस्त्येव कालभेदात् साधनभेदाच्च । इतिभाष्यम् ॥*

अथ प्रथमाध्याय के तीसरे चरण का आरम्भ किया जाता है ॥

१६३–क्रियावचन जो भूवादि शब्द वे धातु संज्ञक होते हैं । जैसे-भू
ादि की धातु संज्ञा होकर, भवति, आदि प्रयोग बनते हैं । यहां क्रियावचन
यों कहा–विकल्पार्थ वा शब्द की धातु संज्ञा न हो । भूवादि शब्दों की धातु
ज्ञा क्यों कही–आणवयति । इत्यादिकों में प्राकृतशब्दों की धातु संज्ञा न हो ॥
भाष्यकार कहते हैं कि–जो फिर भाववचन धातु होता है ऐसा लक्षण किया
ाता है तो कैसे फिर जाना जाय कि–पचादि भाव वचन हैं । जो भवति से
न पचादिकों की समानाधिकरणता होती है जैसे–भवति पचति । पकता
ोता है । इत्यादि तो क्या यह वाणी की युक्ति है ?

* ननु अन्यत्रोक्तं लिङ्भिहितो भावः क्रियया समवायं न गच्छति नहि भव-
ि पचति पठतीति । तत्कथमेतद् विरुध्यते । अत्राह–कर्मकर्तृभावेन क्रियास्यात-
ंक्रियया संबं[illegible] भवति पचति । पश्यमृगो धावतीति वत्यादिभावेन
[illegible] भूर्तानादिति वैयटः ॥

परत्वान्नपुंसकं शिष्यते । तच्च देवदत्तश्च=ते । अद्वन्द्वतत्पुरुषविशेषणानाम् । कु
टमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । पूर्वशेषः खल्वपि दृश्यते । स च यश्च=यौ
इति भाष्यम् ॥ ७२ ॥

१६२—ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ ७३ ॥

प०—ग्राम्यपशुसङ्घेषु ७ । ३ अतरुणेषु ७ । ३ स्त्री १ । १ । अनु० ए
शेषः । एकविभक्तौ । तल्लक्षणः । चेत् । एव । विशेषः ॥

पदा०—ग्राम्यपशुसङ्घेषु=ग्रामे भवाः ग्राम्याः (४ । २ । ९३) भवार्थे
ग्राम्याश्च ते पशवश्च तेषां सङ्घास्तेषु । अतरुणेषु=न तरुणेषु ।

सूत्रा०—एकविभक्तौ परतोऽतरुणेषु ग्राम्यपशुसङ्घेषु स्त्री शिष्यते तल्ल
णएव विशेषश्चेत् । पुमान्स्त्रियेत्यस्यापवादः । गाव इमाः । अजा इमाः । ग्रा
नि किम्—रुरव इमे । पशुग्रहणं किम्—ब्राह्मणा इमे । सङ्घेषु किम्—एतौ गावौ ।
तरुणेषु किम्—वत्सा इमे । बर्करा इमे ॥७३॥

अनेकशफेष्विति वक्तव्यम् । इह मा भूत्—अश्वा इमे । गर्दभा इमे । इति भा
ष्यम् । इति प्रथमाध्याये द्वितीयप्रकरणः ॥

होता है जैसे—तच्च देवदत्तश्च=ते । द्वन्द्व और तत्पुरुष के विशेषणों का पुंल्लि
एकशेष नहीं होता है जैसे—कुक्कुटमयूर्याविमे । यहां इमे पद स्त्रीलिङ्ग पर
हुआ । मयूरीकुक्कुटाविमौ । यहां पुल्लिङ्ग एकशेष हुआ ॥ यहां पूर्वशेष भी दे
खता है । स च यश्च=यौ । इत्यादि शिष्टप्रयोगों में । यह सब भाष्य में स्पष्ट है ॥

१६२—एक विभक्ति के परे अतरुण ग्राम्य पशुओं के समुदायों में स्त्री एक
होता है तल्लक्षण ही विशेष हो तो । «पुमान्स्त्रिया» इसका यह अपवाद है । गाव
इमे । गावश्च-इमाश्च=गाव इमाः । यहां पुंल्लिङ्ग गो शब्द का लोप होता है ।
अजा इमाः । यहां भी स्त्रीलिङ्ग शेष हुआ । ग्राम्य ग्रहण क्यों किया «रुरव इमे»
यहां पुंल्लिङ्ग रुरु शब्द का एकशेष होता है । क्योंकि रुरु जङ्गली है जो बा
रहा करते हैं । पशु ग्रहण क्यों किया-ब्राह्मणा इमे यहां «ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी
यहां ब्राह्मण शब्द शेष रहता है । सङ्घ ग्रहण क्यों किया—एतौ गावौ । यहां दो
हैं । अतरुण ग्रहण क्यों किया—वत्सा इमे । बर्करा इमे । यहां वत्स? बछड़े छो
बकरे बकरियों में स्त्री का एकशेष नहीं होता है ॥७३॥

भाष्य में कहा है—अनेक शफ वाले पशुओं में स्त्री का एकशेष होता है ऐसा
कहना चाहिये । अश्वा इमे । गर्दभा इमे । यहां स्त्री का एकशेष नहीं क्योंकि
घोड़े गदहे एक शफ वाले होते हैं । अनेक खुर फिर नहीं इनमें वह अनेक
खुर वाले नहीं हैं । यह प्रथमाध्याय में दूसरा प्रकरण पूरा हुआ ॥

१९४–उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ २ ॥

प०–उपदेशे ७ । १ अच् १ । १ अनुनासिकः १ । १ इत् १ । १ संज्ञासूत्रम्

पदा०–उपदेशे=उपदिश्यतेऽनेनेत्युपदेशस्तस्मिन् । उपदेशः=शास्त्रवाक्यानि धातुप्रातिपदिकप्रत्ययनिपातागमादेशस्थानि । अनुनासिकः=नासिकामनुगतः

सूत्रा०–उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञको भवति । प्रत्यक्षमाप्तानामुपदेशः । गुणैः प्रापणमुद्देशः । एध । सु । कुक् । टुक् । नुट् । इत्यादिषूपदेशविज्ञानादकारादयोऽनुनासिका इतो भवन्ति । एधते । इत्यादि । उपदेशः किम्–अभ्रम्ना ३ पः । अच् किम्–पामा । पामानौ । पामानः । मनिनो मकारस्य मा भूत् । अनुनासिकः किम्–रामेषु । घटेषु । इत्संज्ञा आदितश्चेत्येवमादयः ॥ २ ॥

१९५–हलन्त्यम् ॥ ३ ॥

प० हलन्त्यम् १ । १ अथवा–हल् १ । १ अन्त्यम् १ । १ अनु०–उपदेशे । इत्

टि०–वह यह धातु की उक्ति है पचादिक्रिया ये भवति क्रिया की कर्तृ वाचिका होती है । यद्यपि यह यहां कह सकते हैं जहां और और क्रिया है वहां वही क्रिया हो वहां कैसे । भवेदपि भवेत् । हो भी हो । यहां अन्य भाव भेद क्योंकि–काल और साधन भेद से उक्त प्रयोग में जो प्रथम «भवेत्» शब्द कहा गया उस से दूसरा «भवेत्» दूसरे काल की अपेक्षा से कहा गया । तथा साधन भेद भी दोनों क्रियाओं की अपेक्षा से हो जाता है अतएव दोनों क्रियाओं में अन्यान्य भाव है ॥ १ ॥

१९४–उपदेश में जो अनुनासिक अच् वह इत्संज्ञक होता है । प्रत्यक्ष आप्तजन (महर्षियों का जो प्रत्यक्ष कथन) उपदेश कहाता है । गुणों से जिस की प्राप्ति कराना है वह उद्देश कहाता है । एध० इत्यादिकों में उपदेश विधान से अनुनासिक अकारादि इत् संज्ञक होते हैं । इत् संज्ञा होकर उन अकारादिकों का लोप होता और–एधते । इत्यादि प्रयोग बनते हैं । उपदेश ग्रहण क्यों किया–अभ्रम्ना अपः । यहां आकार को अनुनासिक (८ । ४ । ५७) होता वह कृत्रिम है इस से उस की इत् संज्ञा नहीं होती है । अच् ग्रहण क्यों है–पामा० । इत्यादि में मनिन् के मकार की इत् संज्ञा नहीं होती है । अनुनासिक ग्रहण क्यों किया–रामेषु । इत्यादि में सु के उकार की इत् संज्ञा नहीं होती । इत् प्रदेश (आदितश्च) इत्यादि हैं ॥ २ ॥

पदा०-हलन्त्यम्=हल् च हलौ अन्ते भवमन्त्यम् । हलोरन्त्यम् । द्वितीयेऽर्थे शाद्गोरितिवत् षष्ठी । यद्वा द्वितीयं हल्प्रत्याहारशास्त्रं लोपाच्च द्रष्टव्यम् । तेन प्रत्याहारे हलो लकारस्येत्संज्ञा क्रियते । एवं नान्योऽन्याश्रयः ॥

सूत्रा०-हलोऽन्त्यमुपदेशे हल्रूपमन्त्यं चेत्संज्ञकं भवति । हल् । अण् । अच् । सुप् । तिङ् । इत्यादि । उपदेशइति किम्-सोमसुत् । कर्मकृत् । अन्त्यं किम्-वाचालः ॥

व्यवसितान्त्यो हलित्संज्ञो भवतीति वक्तव्यम् । के पुनर्व्यवसिताः । धातुप्रातिपदिकप्रत्ययनिपातागमादेशाः । इतिभाष्यम् ॥

१६६-न विभक्तौ तुस्माः ॥४॥

प०-न । विभक्तौ ७ । १ तुस्माः १ । ३ अनु०-इत् ॥

पदा०-तुस्माः=तुश्च स् च मश्च ते ॥

सूत्रा०-विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा इत्संज्ञका न भवन्ति । रामात् । सर्वस्मिन् । रामाः । पचथः । अपचताम् । अपचतम् । विभक्तौ किम्-अहंयुः । शुभंयुः । चेयम् । जेयम् । इदमस्थमुरित्युकारोच्चारणसामर्थ्यादनित्योऽयम् । तेन । क । इतिभाष्यम् ॥ ४ ॥

१६५-हल् का अन्त्य और हल् रूपका अन्त्य हल् इत्संज्ञक होता है । हल् । इत्यादिकों में ल् आदि इत्संज्ञक हैं । उपदेश ग्रहण क्यों है-सोमसुत् । कर्म-कृत् यहां, त, तुक् के आगम का है इससे इत् नहीं होता है । अन्त्य ग्रहण क्यों है-वाचालः । यहां मध्य लकार की इत् संज्ञा नहीं होती है ॥३॥

१६६-विभक्तिस्थ तवर्ग सकार मकार इत् संज्ञक नहीं होते हैं । रामात् । इत्यादि प्रयोगों में त, स्, म्, म् इन को इत् संज्ञा न हुई । विभक्ति ग्रहण क्यों किया-अहंयुः । शुभंयुः । यहां (५ । २ । १४०) युस् प्रत्यय होता है इस के सकार की इत् संज्ञा हुई । चेयम् । जेयम् यहां यत् (३ । १ । ९७) प्रत्यय होता है उस के तकार की इत् संज्ञा होती है । इदमस्थमुः (५ । ३ । २४) इस सूत्र में विभक्ति संज्ञक थमु प्रत्यय के मकार की रक्षा के लिये उकार को बांधे न यद्यपि यह अर्थ हो यदि "न विभक्तौ" सूत्र नित्य हो तो, तो भी यदि उकार पढ़ा है तो उकारोच्चारण सामर्थ्य से "न विभक्तौ" यह अनित्य है इससे । कहीं यहां विभक्ति संज्ञक थम् प्रत्यय के मकार की इत् संज्ञा होती है ॥ ४ ॥

हरणम् । शः—भवति । भवतः । कः-कृतः । कृतवान् । गः-जनमेजयः । ग-जिष्णुः । भूष्णुः । घः—भासुरः । मेदुरः । ङः-सुकृतः । सुकृति । अतद्धिते किम्-चूडालः । लोमशः । व्यूढोरस्कः ॥ ८ ॥

१७१—तस्यलोपः ॥ ९ ॥

प०-तस्य ६ । १ लोपः १ । १ अनु० । इत् ॥

सूत्रा०-तस्येत्संज्ञकस्य लोपो भवति । गमः । गार्ग्यः । इदित्यनुवृत्तेन सि-द्धेस्तस्यग्रहणं सर्वलोपार्थम् । तेन भिदिङ्गानामन्त्यलोपो न ॥

प०-अनेकान्ता अनुबन्धाः । अवदातं मुखम् ॥ एकान्ता अनुबन्धाः ॥ कुण्डानि । वनानि ॥ किं पुनरत्र न्याय्यम् । एकान्ता इत्येव न्याय्यम् । इतिभाष्यम् ॥

१७२—यथासंङ्ख्यमनुदेशस्समानाम् ॥१०॥

प०-यथासङ्ख्यम् १ । १ अनुदेशः १ । १ समानाम् ६ । ३ स्वरितेन-इत्याकर्षणं परस्मात् ॥

पदा०-यथासङ्ख्यम्=सङ्ख्यामनतिक्रम्य । सङ्ख्याशब्दोऽत्र क्रमपरः यथासङ्ख्यं यथाक्रममिति यावत् । अनुदेशः=अनुदिश्यते पश्चादुच्चार्यत इत्यनु-देशः । समानाम् समसङ्ख्यानाम् । परिभाषेयम् ॥

कः—कृतः । कृतवान् । यहां क्त (३ । २ । १०२) प्रत्यय होकर ककार की इत् सञ्ज्ञा होती है । जनमेजयः । इत्यादि में खश् (३ । २ । २८) जिष्णुः, भूष्णुः । यहां ग्स्नु (३ । २ । १३९) प्रत्यय । भासुरः । मेदुरः । यहां घुरच् (३ । २ । १६१) प्रत्यय । सुकृतः । सुकृति । यहां ङम् ङि प्रत्यय होते हैं । अतद्धितग्रहण क्यों किया—चूडालः । यहां लच् (५ । २ । ९६) प्रत्यय होता उस के लकार=की इत् सञ्ज्ञा नहीं होती । लोमशः । यहां श (५।२।१००) प्रत्यय की इत्सञ्ज्ञा और व्यूढोरस्कः । यहां कप् (५ । ४ । १५१) प्रत्यय के ककार की इत् सञ्ज्ञा नहीं होती है ।

प०—अनुबन्ध अनेकों के समीपवर्त्ती होते हैं अर्थात् एक के अवयव नहीं होते हैं । अवदातम् मुखम् । यहां अनेकान्त पक्ष मानि दैप् के ऐकार का आकार (६।१।४५) आदेश होकर दाप् होजाता दाप् की घुसंज्ञा का निषेध होकर घुसंज्ञा प्रयुक्त कार्य (७।४।४६) नहीं होता है ॥ अनुबन्ध एकान्त (एक के अवयव) भी होते हैं । कुण्डानि । इत्यादि में जस् के स्थान में जो (शि) आदेश होता है उस में जो श-कार है यदि वह उसका अवयव न माना जाय तो शि आदेश को शित् नहीं मान सकने न वह सर्वादेश होसकता है ॥ फिर इन अनुबन्धों में न्याय युक्त कौन पक्ष है । एकान्त पक्षही न्याय युक्त है । यह भाष्य में कहा है ॥८॥

सूत्रा०—स्वरितेन वर्त्तमानानां समसङ्ख्यानामुद्देश्यानुदेशिनां वाक्यार्थबोधकालिकसम्बन्धो यथाक्रमं भवति। प्रथमस्य प्रथमेन द्वितीयस्य द्वितीयेनेत्यादि। तौदेयः। शालातुरीयः। वार्मतेयः। कौचवार्य्यः। समानामिति किम्—लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्य्यनवः। अत्र लक्षणादयश्चत्वारोऽर्थाः प्रत्यादयस्त्रयः। ततस्सङ्ख्यातानुदेशो न भवति सर्वेष्वर्थेषु सर्वेषां कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञा भवति। अत्र शब्दतः सङ्ख्यासाम्यं चेत्परस्मैपदानां णलित्यादिषु दोषः। अर्थतश्चेत्स्यतासी लृलुटोरित्यादिषु दोषः। अत्रहि भाष्यकारः—यथासङ्ख्यमनुदेशस्समानां स्वरितेनेति। अतएव-वेशोयशआदेर्भगाद्यल्। ख च। अत्र सङ्ख्यातानुदेशो न भवति नात्र स्वरितत्वं प्रतिज्ञायते ॥ १० ॥

१७३—स्वरितेनाधिकारः ॥११॥

प०—स्वरितेन=३ । १ । अधिकारः=१ । १ । परिभाषेयम् ॥

पदा०—स्वरितेन=स्वरितशब्दनिष्ठोऽविशेषधर्मस्तेन ।

१७२—स्वरित गुण के साथ वर्त्तमान समान सङ्ख्यावाले उद्देश्य और अनुदेशियों का वाक्यार्थ बोधकालिक सम्बन्ध यथाक्रम होता है। अर्थात् प्रथम के साथ प्रथम द्वितीय के साथ द्वितीय इत्यादि। तौदेयः। इत्यादि में। तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः। इस सूत्र से व हेतुए-तूदी शलातुर वर्मती कूचवार इन शब्दों से ढक् छण् ढञ् यक् ये प्रत्यय प्रथम के साथ प्रथम द्वितीय के साथ द्वितीय इत्यादि क्रमशः होते हैं। समानां—ग्रहण क्योंकिया—लक्षणेत्थं०—यहां लक्षण इत्थंभूताख्यान भाग वीप्सा ये चारि अर्थ हैं और प्रति परि अनु ये तीन हैं अतः इन का सङ्ख्यातानुदेश नहीं होता है। सब अर्थों में सबकी कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है॥ यदि शब्दों से सङ्ख्यासाम्य हो तो परस्मैपदानां०—इस में दोष आता है—परस्मैपदानाम्—यह एक शब्द है णलादि बहुत हैं। अर्थ से सङ्ख्यासाम्य होतो स्यतासी यहां दोष आता है क्योंकि लृ—से लृट् लृङ् दो का ग्रहण है अतएव लृट् लुट् लृङ् तीन हुए रूप तासि दो हैं इन का सङ्ख्यातानुदेश नहीं प्राप्त है इस अंश में भाष्यकार कहते हैं—समानों का अनुदेश स्वरित गुण के साथ हो। अतएव वेशस्-यशस्पूर्वक भगशब्द से यत् और ख यह यथासङ्ख्य नहीं होते हैं यहां स्वरित्वप्रतिज्ञा नहीं है ॥१०॥

हरणम् । शः—भवति । भवतः । कः—कृतः । कृतवान् । खः—जनमेजयः । गः— जिष्णुः । भूष्णुः । घः—भासुरः । भेदुरः । ङः—सुकृतः । सुकृति । अतद्धितस्य किम्—चूडालः । लोमशः । व्यूढोरस्कः ॥ ८ ॥

१७१–तस्यलोपः ॥ ९ ॥

प०–तस्य ६ । १ लोपः १ । १ अनु० । इत् ॥

सूत्रा०–तस्येत्संज्ञकस्य लोपो भवति । रामः । गार्ग्यः । इदित्यनुवर्तमाने सि द्धेस्तस्यग्रहणं सर्वलोपार्थम् । तेन ञिटुडूनामन्त्यलोपो न ॥

प०–अनेकान्ता अनुबन्धाः । अवदातं मुखम् ॥ एकान्ता अनुबन्धाः ॥ कु ण्डानि । वनानि ॥ किं पुनरत्र न्याय्यम् । एकान्ता इत्येव न्याय्यम् । इतिभाष्यम् ॥९॥

१७२–यथासंख्यमनुदेशस्समानाम् ॥१०॥

प०-यथासङ्ख्यम् १ । १ अनुदेशः १ । १ समानाम् ६ । ३ स्वरितेन- इत्याकर्षण परस्मात् ॥

पदा०–यथासङ्ख्यम्=सङ्ख्यामनतिक्रम्य । सङ्ख्याशब्दोऽत्र क्रमपरः । यथासङ्ख्यं यथाक्रममिति यावत् । अनुदेशः=अनुदिश्यते पश्चादुच्चार्यत इत्यनु- देशः । समानाम् समसङ्ख्यानाम् । परिभाषेयम् ॥

कः—कृतः । कृतवान् । यहां क्त (३ । २ । १०२) प्रत्यय होकर ककार की इत् संज्ञा होती है । जनमेजयः । इत्यादि में खश् (३ । २ । २८) जिष्णुः, भूष्णुः । यहां ग्स्नु (३ । २ । १३९) प्रत्यय । भासुरः । भेदुरः । यहां घुरच् (३ । २ । १६१) प्रत्यय । सुकृतः । सुकृति । यहां इक् ङि प्रत्यय होते हैं । अतद्धितग्रहण क्यों कि- या—चूडालः । यहां लच् (५ । २ । ९६) प्रत्यय होता उस के लकार की इत् संज्ञा नहीं होती । लोमशः । यहां श (५।२।१००) प्रत्यय की इत्संज्ञा और व्यू- ढोरस्कः । यहां कप् (५ । ४ । १५१) प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा नहीं होती है ।

प०–अनुबन्ध अनेकों के समीपवर्ती होते हैं अर्थात् एक के अवयव नहीं होते हैं । अवदातम् मुखम् । यहां अनेकान्त पक्ष मानि दैप् के ऐकार को आकार (६।१।४५) आदेश होकर दाप् हो जाता दाप् की घुसंज्ञा का निषेध होकर घुसंज्ञा प्रयुक्त कार्य (७।४।४६) नहीं होता है ॥ अनुबन्ध एकान्त (एक के अवयव) भी होते हैं । कु- ण्डानि । इत्यादि में जस् के स्थान में जो (शि) आदेश होता है उस में जो श- कार है यदि वह उसका अवयव न माना जाय तो शि आदेश को शित् नहीं मान सकने से वह सर्वादेश हो सकता है ॥ फिर इन पक्षों में न्याय युक्त कौन पक्ष है । एकान्त पक्ष ही न्याय युक्त है । यह भाष्य में कहा है ॥९॥

सूत्रा०—स्वरितेन वर्त्तमानानां यथासङ्ख्यानामुद्देश्यानुद्देशिनां वाक्यार्थबोधकालिकस्सम्बन्धो यथाक्रमं भवति। प्रथमस्य प्रथमेन द्वितीयस्य द्वितीयेनेत्यादि। तौदेयः। शालातुरीयः। वार्मतेयः। कौचवार्यः। समानामिति किम्—लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः। अत्र लक्षणादयश्चत्वारोऽर्थाः प्रत्यादयस्त्रयः। ततस्सङ्ख्यातानुदेशो न भवति सर्वेष्वर्थेषु सर्वेषां कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञा भवति। अथ शब्दतः सङ्ख्यासाम्यं चेत्परस्मैपदानां णलतुसादिषु दोषः। अर्थतश्चेत्स्यतासी लृलुटोरित्यादिषु दोषः। अत्राह भाष्यकारः—यथासङ्ख्यमनुदेशस्समानां स्वरितेनेति। अतएव वेशोयशआदेर्भगाद्यल्। ख च। अत्र साङ्ख्यातानुदेशो न भवति अत्र स्वरितत्वं प्रतिज्ञापितं॥ १०॥

१७३—स्वरितेनाधिकारः ॥११॥

प०—स्वरितेन=३। १। अधिकारः=१। १। परिभाषेयम्॥

पदा०—स्वरितेन=स्वरितशब्दनिष्ठोऽविशेषधर्मस्तेन।

१५२—स्वरित गुण के साथ वर्त्तमान समान सङ्ख्यावाले उद्देश्य और अनुदेशियों का वाक्यार्थ बोधकालिक सम्बन्ध यथाक्रम होता है। अर्थात् प्रथम के साथ प्रथम द्वितीय के साथ द्वितीय इत्यादि। तौदेयः। इत्यादि में। तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराड्ढक्छण्ढञ्यकः। इस सूत्र से कहे हुए- तूदी शलातुर वर्मती कूचवार इन शब्दों से ढक् छण् ढञ् यक् ये प्रत्यय प्रथम के साथ प्रथम द्वितीय के साथ द्वितीय इत्यादि क्रमशः होते हैं। समानां-ग्रहण क्यों किया-लक्षणेत्थं०-यहां लक्षण इत्थंभूताख्यान भाग वीप्सा ये चारि अर्थ हैं और प्रति परि अनु ये तीन हैं अतः इन का सङ्ख्यातानुदेश नहीं होता है। सब अर्थों में सबकी कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है॥ यदि शब्दों से सङ्ख्यासाम्य हो तो परस्मैपदानां०-इस में दोष आता है- परस्मैपदानाम्-यह एक शब्द है णलादि बहुत हैं। अर्थ से सङ्ख्यासाम्य होतो स्यतासी यहां दोष आता है क्योंकि लृ-से लृट् लृङ् दो का ग्रहण है अतएव लुट् लृट् लृङ् तीन हुए दो ही प्रत्यय हैं इन का सङ्ख्यातानुदेश नहीं प्राप्त है इस अंश में भाष्यकार कहते हैं-समानों का अनुदेश स्वरित गुण के साथ हो। अतएव वेशोयशः-यशस्पूर्वक भगशब्द से यत् और ख यह यथासङ्ख्य नहीं होते हैं यहां स्वरितप्रतिज्ञा नहीं है॥१०॥

सूत्रा०-स्वरितेनाधिकारो वेदितव्यः । स्वरितगुणयुक्तशब्द उत्तरत्रोप-
प्रत्ययः । धातोः । इत्यादि ॥११॥

१७४-अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥१२॥

प०-अनुदात्तङितः=५ । १ आत्मनेपदम्=१ । १ । अनु०-धातवः ।

पदा०-अनुदात्तङितः=अनुदात्तश्च ङ् च अनुदात्तङौ इत् इतौ अनुदा-
इतौ यस्य तस्मात् । धातवः=धातुभ्यः । अर्थवशाद्विभक्तिविपरिणामः ॥

सूत्रा०-अनुदात्तेतो ङितश्च ये धातवस्तेभ्य एवात्मनेपदं भवति नान्येभ्यः
तिप्तस्झीत्यादिना धातोरात्मनेपदे परस्मैपदे च प्राप्ते नियमार्थमिदम् । ए
एधते । स्पर्द्ध-स्पर्द्धते । षूङ्-सूते । शीङ्-शेते । यङ्-बोभूयते ॥

प०-विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् । एधते । स्पर्द्धते ॥ १२ ॥

१७३-स्वरित से अधिकार जानना योग्य है । स्वरितगुण युक्त शब्द उत्त
उपस्थित होता है । जैसे-प्रत्ययः । धातोः । इत्यादिकों में स्वरितत्व प्रति-
मानि अगले सूत्रों में इन की उपस्थिति होती है ॥११॥

१७४-अनुदात्तेत् और ङित् जो धातु हैं उन्हीं से आत्मनेपद होता
औरों से नहीं । तिप्तस्झि०-इस सूत्र से धातु से परे आत्मनेपद और परस्मै
के प्राप्त होने में यह नियमार्थ है । एधते । स्पर्द्धते । यहां एध स्पर्द्ध ये अनु-
दात्तेत् हैं । सूते । शेते । यहां षूङ् शीङ् ये ङित् हैं । बोभूयते । यहां
धातु यङन्तङित् है ॥

प०-विकरणों से नियम अत्यन्त बलवान् होता है । एधते । स्पर्द्धते । य
यह शङ्का है कि-एध आदि से परे लकार के स्थान में आत्मनेपदादि आदे
प्रथम करें वा विकरण शप् आदि । आत्मनेपदादि के करने से प्रथम और पी
भी विकरणों की प्राप्ति है इसपे वे नित्य हैं नित्य होने से प्रथम होने चाहि
विकरण प्रथम होने में फिर आत्मनेपदादिकों की प्राप्ति नहीं क्योंकि-अनुदा
ङित् इत्यादि पञ्चमी निर्दिष्ट हैं पञ्चमीनिर्दिष्ट से अव्यवहित उत्तर को का
होना चाहिये । विकरण बीच में हो जाते हैं इस से आत्मनेपदादि नहीं प्रा
हैं इस शङ्का के दूर करने के उक्त परिभाषा है विकरणों से नियम अत्यन्त ब-
लवान् होने के कारण प्रथम नियम (आत्मनेपदादि विधायक) होते पी
विकरण होते हैं ॥ १२ ॥

१७५–भावकर्मणोः ॥१३॥

प०—भावकर्मणोः=७ । २ । अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् ।

पदा०—भावकर्मणोः–भावश्च कर्म च=भावकर्मणी=तयोः ॥

सूत्रा०—भावे कर्मणि च धातोरात्मनेपदं भवति । लः कर्मणीति विहितस्य लस्थानेनात्मनेपदं नियम्यते । भावे–भूयते–भवता, भवद्भ्यां, भवद्भिः । अत्र धात्वर्थस्य क्रिया भावार्थकलकारेणानूद्यते ततश्च युष्मदस्मदोस्तिङ्वाच्यकारकवाच्याभावाच्च मध्यमोत्तमौ । किन्तु प्रथमपुरुष एव । तथापि धातुवाच्यक्रियाया द्रव्यरूपत्वेन द्वित्वबहुत्वाप्रतीतेर्न द्विवचनबहुवचने किन्त्वेकवचनमेव तस्यौत्सर्गिकत्वेन सङ्ख्यानपेक्षत्वात् । कर्त्तुरनुक्तत्वात्तृतीया । कर्मणि–क्रियते कटः । क्रियेते कटौ । क्रियन्ते कटाः । त्वया मयान्यैश्च । क्रियसे त्वम् । क्रियेथे युवाम् । क्रियध्वे यूयम् । क्रियेऽहमीश्वरेण । क्रियावहे आवाम् । क्रियामहे वयम् । कर्मण उक्तत्वात्प्रथमा कर्त्तुरनुक्तत्वात्तृतीया ॥ १३ ॥

१७६–कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे ॥१४॥

प०–कर्त्तरि=७ । १ । कर्मव्यतिहारे=७ । १ । अनु० धातवः । आत्मनेपदम् ॥

पदा०–कर्त्तरि=करोतीति कर्त्ता तस्मिन् । कर्मव्यतिहारे=कर्मणः क्रियाया व्यतिहारो विनिमयस्तस्मिन् । यत्रान्यसम्बन्धिनीं क्रियामन्यः करोति स विनिमयः ॥

१७५–भाव और कर्म में धातु से आत्मनेपद होता है । यह लः कर्मणि० इस सूत्र से विहित लकार के स्थान में आत्मनेपद का नियम करता है । भाव–भूयते । यहां धातुवाच्य क्रिया भावार्थक लकार से अनुवाद की जाती है । इस कारण युष्मद्‌अस्मद् के तिङ्वाच्यकारकवाचित्व के अभाव से मध्यम और उत्तमपुरुष यहां नहीं होते किन्तु प्रथमपुरुष ही होता है । और यहां भी धातुवाच्य जो भूयते इत्यादि क्रिया है इस के द्रव्यरूप होने से द्विवचन बहुवचन की प्रतीति होती है इस से द्विवचन बहुवचन नहीं होते हैं किन्तु एकवचन ही होता है यह औत्सर्गिक अथवा सङ्ख्या की अपेक्षा नहीं है । कर्त्ता के अनुक्त होने से कर्त्ता में तृतीया और कर्म के उक्त होने से कर्म में प्रथमा होती है । जैसे–क्रियते कटस्त्वया । इत्यादि ॥ १३ ॥

१७६–क्रिया विनिमय द्योतित हो तो धातु से कर्त्ता में आत्मनेपद होता है । व्यतिलुनते । और के योग्य काम को और करते हैं । यहां व्यति शब्द क्रिया

सूत्रा०—कर्मव्यतिहारे द्योत्ये धातोः कर्त्तर्यात्मनेपदं भवति । व्यतिलुनते अन्यस्य योग्यं कर्मान्ये कुर्वन्तीत्यर्थः । कर्तृग्रहणं शेषात्कर्त्तरीत्यत्रानुवृत्त्यर्थम् ।

क्रियाव्यतिहारइति वक्तव्यम् । न वक्तव्यम् । इह कर्त्तरिव्यतिहारइतीयत सिद्धम् । सोयमेवं सिद्धे सति यत्कर्मग्रहणं करोति तस्यैतत् प्रयोजनम् क्रियाव्यतिहारे यथा स्यात् । इति भाष्यम् ॥ १४ ॥

१७७—न गतिहिंसार्थेभ्यः ॥१५॥

प०—न=१ । १ । गतिहिंसार्थेभ्यः=५ । ३ । अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् । कर्मव्यतिहारे ॥

पदा०—गतिहिंसार्थेभ्यः=गतिश्च हिंसा च गतिहिंसे । अर्थश्च अर्थश्चार्थौ । गतिहिंसे अर्थौ येषान्तेभ्यः ॥

सूत्रा०—कर्मव्यतिहारे गत्यर्थेभ्यो हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्य आत्मनेपदं न भवति । व्यतिगच्छन्ति । व्यतिसर्पन्ति । व्यतिहिंसन्ति । व्यतिघ्नन्ति । प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् । व्यतिहसन्ति व्यतिजल्पन्ति । व्यतिपठन्ति । हरिवहोरप्रतिषेधः । संप्रहरन्ते राजानः । संविवहन्ते गर्गैरिति । न वहिर्गत्यर्थः । देशान्तरप्रापणक्रियोऽत्र वहिः । इतिभाष्यम् ॥ १५ ॥

के विनिमय का द्योतक है । 'कर्त्तरि, इस पद का विशेष उपयोग यहां नहीं अतएव शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम्, यहां अनुवृत्ति लेने के लिये है ॥

क्रियाव्यतिहार में आत्मनेपद हो ऐसा कहना चाहिये । भाष्यकार कहते हैं न कहना चाहिये । यहां कर्त्तरि व्यतिहारे इतना कहने से कार्यसिद्धि होती थी क्योंकि क्रिया में उद्यम कर्त्ता होता है अतएव कर्मव्यतिहार तो क्रिया करने में आप ही प्राप्त है सो यह आचार्य कार्य सिद्ध होने पर भी जो कर्म पद लाता है इस का प्रयोजन यह है कि क्रियाव्यतिहार में भी होवे ॥ १४ ॥

१७७—कर्मव्यतिहार द्योत्य हो तो गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुओं से परे आत्मनेपद नहीं होता है ॥ व्यतिगच्छन्ति । इत्यादि में व्यति शब्द क्रिया विनिमय का द्योतक है इस से इन प्रयोगों में आत्मनेपद नहीं होता है ॥

प्रतिषेध में हसादिकों का उपसंख्यान करना चाहिये । व्यतिहसन्ति । इत्यादिकों में आत्मनेपद का निषेध हो ॥ हृ और वह इस का अप्रतिषेध है । संप्रहरन्ते राजानः । संविवहन्ते गर्गैः । यहां आत्मनेपद होता है । यहां वह धातु गत्यर्थक नहीं है देश से दूसरे देश पहुंचाने अर्थ वाला यहां वह धातु है ॥१५॥

१८८–इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥१६॥

प०–इतरेतरान्योन्योपपदात्=५ । १ । च=१ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् । कर्मव्यतिहारे । न ॥

पदा०–इतरेतरान्योन्योपपदात्- इतरेतरश्चान्योन्यश्च तौ उपपदौ यस्य ततः ॥

भ्रषा०–इतरेतरान्योन्योपपदाद्धातोः कर्मव्यतिहारे आत्मनेपदं न भवति । इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति । अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्ति । परस्परोपपदाच्चेति वक्तव्यम् । परस्परस्य व्यतिलुनन्ति ॥ १६ ॥

१८९–नेर्विशः ॥१७॥

प०–नेः=५ । १ । विशः ५ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् ॥

भ्राषा०–नेः परस्माद्विशो धातोरात्मनेपदं भवति शेषात्कर्तरीत्यस्यापवादः । निविशते । निविशेते । निविशन्ते । यदागमपरिभाषयात्रापि । न्यविशत । नेरिति किम्-प्रविशति । अर्थवद्ग्रहणपरिभाषया नेह-मधुनि विशन्ति भ्रमराः ॥

१९०–परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥ १८ ॥

प०–परिव्यवेभ्यः=५ । ३ । क्रियः=५ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् ॥

१८८–इतरेतर और अन्योन्य ये उपपद हों तो कर्मव्यतिहार अर्थ में धातु से आत्मनेपद नहीं होता है । इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति । इत्यादि में आत्मनेपद नहीं होता है ॥

परस्पर शब्द से परे जो धातु उस से आत्मनेपद नहीं होता ऐसा कहना चाहिये । परस्परस्य व्यतिलुनन्ति । यहां भी आत्मनेपद नहीं होता है ॥१६॥

१८९–नि से परे विश धातु से आत्मनेपद होता है । शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् । इस का यह अपवाद है । निविशते । इत्यादि में परस्मैपद प्राप्त है उस को बाध के आत्मनेपद होता है । यदागम परिभाषा के बल से यहां भी होता है । न्यविशत । यहां अडागम अधिक है । नि ग्रहण क्यों किया । प्रविशति । यहां प्रोपसृष्ट विश धातु से आत्मनेपद नहीं होता है । "अर्थवद् ग्रहणे नानर्थकस्य" इस परिभाषाबल से । मधुनि विशन्ति भ्रमराः । यहां मधुनि यह सप्तम्येकवचनान्त है इस का एकदेश "नि" है सो अनर्थक है क्यों कि–"समुदायो ह्यर्थवान् समुदायस्यैकदेशोऽनर्थकः" समुदाय अर्थवान् होता और समुदाय का एकदेश अनर्थक होता है ॥ १८ ॥

१९०–परि, वि, अव, इन से परे जो क्री धातु उस से आत्मनेपद हो । परिक्रीणीते । इत्यादि में पर्य्यादिकों के उपपद होने से आत्मनेपद होता है ।

पदा०-परिव्यवेभ्यः=परिश्च विश्च अवश्च=तेभ्यः ॥

सू०-परिव्यवेभ्यः परस्मात् क्रियो धातोरात्मनेपदं भवति । परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते । परस्परसाहचर्य्यादुपसर्गस्यैव ग्रहणं तेनेह न-बहुवि क्रीणाति वनम् ॥ १८ ॥

१८१-विपराभ्यां जेः ॥ १९ ॥

प०-विपराभ्याम्=५ । २ । जेः=५ । १ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् ।

पदा०-विपराभ्याम्=विश्च पराश्च ताभ्याम् ॥

सूत्रा०-विपरापूर्वाज्जयतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । शेषात्कर्त्तरीत्यस्यापवादः । विजयते । पराजयते । साहचर्य्यादुपसर्गौ गृह्येते । तेनेह न बहुवि जयति वनम् । परा जयति सेना ॥

सहचरिताऽसहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् । परित्रिगर्त्तेभ्यः । नेदृष्टं परिविद्योतते विद्युत् ॥ १९ ॥

परस्पर के साहचर्य से परि आदि उपसर्ग लिये जाते हैं किन्तु और अर्थों में जो वे पर्य्यादि शब्द हैं उन का ग्रहण नहीं है इस से-बहुवि क्रीणाति वनम् । बहुत पक्षी जिस में हैं उस वन को खरीदता है यहां आत्मनेपद नहीं होता ॥१८॥

१८१-विपरापूर्व जि धातु से आत्मनेपद होता है । "शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम्" इस का यह अपवाद है । विजयते । पराजयते । यहां परस्पर के साहचर्य से वि परा उपसर्ग लिये जाते हैं इस से यहां नहीं होता है-बहुवि जयति वनम् । बहुत पक्षियों वाला वन उत्कर्ष को प्राप्त होता है । परा जयति सेना । उत्कृष्ट सेना जीतती है ॥

प०-सहचरित (साथ विचरने वाला) असहचरित (न साथ विचरने वाला) इन दोनों का ग्रहण जहां हो सकता हो वहां सहचरित का ग्रहण होता है इस कारण । परित्रिगर्त्तेभ्यः । त्रिगर्त्तदेशों को छोड़ के । यहां वर्जनार्थ परि शब्द जो कर्मप्रवचनीय है इस के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है किन्तु वृक्षंपरिविद्योतते विद्युत् । यहां लक्षण अर्थ है (१ । ४ । ९०) जो कर्मप्रवचनीय परि है उस के योग में पञ्चमी विभक्ति नहीं होती है क्योंकि-पञ्चमीविधायक "अपपरि०" सूत्र में अपवर्जनार्थ लिया है उस के साहचर्य से परि भी वर्जनार्थक लिया जाता है ॥ १९ ॥

सूत्रा०-अनुसम्पर्यभ्यश्चाङश्च परस्मात्क्रीड़ इत्येतस्माद्धातोरात्मनेपदं भवति अनुक्रीडते । संक्रीडते । परिक्रीडते । आक्रीडते । समासाहचर्यादन्वादिरुप-सर्गएव गृह्यते । तेनेह न-अनुक्रीडति माणवकम् । माणवकेन सह क्रीडतीत्यर्थः । अत्र तृतीयार्थेऽनोः कर्मप्रवचनीयत्वम् ।

वा०-समोऽकूजनेइति वक्तव्यम् । संक्रीडन्ति शकटानि ॥ आगमेः क्षमायाम् । माणवक आगमयस्व तावत् । सहस्व किञ्चित्कालं मात्वरिष्ठाइत्यर्थः । शिक्षेर्जि-ज्ञासायाम् । विद्यासु शिक्षते । धनुषि शिक्षते । विद्यां जिज्ञासितुं यतते इत्यर्थः ॥ किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेषु । अपस्किरते वृषो हृष्टः । अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी । अपस्किरते श्वा आश्रयार्थी । हर्षेत्यादि किम्-अपकिरति कुसुमम् ॥ हरतेर्गतताच्छील्ये । गतं प्रकारः । ताच्छील्यं निपतनतत्स्वभावता । पैतृकमश्वा

१८३-अनुसम्परि और आङ् से परे जो क्रीड़ धातु उससे आत्मनेपद होता है । अनुक्रीडते । इत्यादि में आत्मनेपद हुआ । सम् के साहचर्य से अनु आदि उपसर्ग लिये जाते हैं इस से यहां नहीं होता है । अनुक्रीडति माणवकम् । बालक के पीछे खेलना अर्थात् बालक के साथ खेलता है । यहां तृतीयार्थ में (१ । ४ । ८५) अनु को कर्मप्रवचनीयत्व है अर्थात् कर्मप्रवचनीय संज्ञा है इस से आत्मनेपद न हुआ । शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्-इस से परस्मैपद हो जाता है ॥ सम् उपसर्ग से परे अकूजन अर्थ में क्रीड़ धातु से आत्मनेपद होता है । संक्रीडन्ति शकटानि । गाड़ियां कूजती हैं । यहां कूजन अर्थ में परस्मैपद होता है ॥ आङ्पूर्वक गम् धातु से सहन अर्थ में आत्मनेपद होता है । माणवक आगमयस्व । हे बालक सहनकर तब तक जल्दी मत करे ॥ जानने की इच्छा में शिक्ष धातु से आत्मनेपद होता है । विद्यासु शिक्षते । इत्यादि में विद्या आदि को जानना चाहता है इस अर्थ को लेकर आत्मनेपद होता है ॥ हर्ष जीविका कुलायकरण (घोंसला करना) इन अर्थों में कृ धातु से आत्मनेपद होता है । हर्ष-हर्षित बैल कुरेदता है । जीविका-भक्ष चाहता हुआ मुर्गा कुरेदता है । कुलायकरण-आश्रय चाहता हुआ कुत्ता [illegible] करता है । इन अर्थों में-अपस्किरते-यहां आत्मनेपद होता है । हर्ष आदि अर्थों को क्यों ग्रहण किया [illegible] छोड़ता है । यहां-अपकिरति-यहां प्रयोग होता है ॥ हृ धातु से गतताच्छील्य अर्थ में आत्मनेपद होता है । गत प्रकार कहाता है । [illegible] [illegible] स्वभाव कहाता है । जैसे घोड़े पिता के अनुहार होते हैं । घोड़े [illegible]

मनुहरन्ते। माकृतंगावोऽनुहरन्ते। तात्छील्ये किम्—मानमनुहरति। आशिषि नाथः। सर्पिषो नाथते। मधुनो नाथते॥ आङि नुप्रच्छ्योः। आनुते शृगालः। आपृच्छते गुरुम्॥ शपउपलम्भने। उपलम्भनमप्रकाशनम्*। देवदत्ताय शपते॥ २१॥

१८४—समवप्रविभ्यः स्थः ॥२२॥

प०—समवप्रविभ्यः=५।३। स्थः=५।१। अनु०—धातवः। आत्मनेपदम्।

पदा०—समवप्रविभ्यः=सम् अव प्र वि एभ्यः॥

सभा०—सम्, अव, प्र, वि एभ्य परस्मात्तिष्ठतेर्धातोरात्मनेपदं भवति। संतिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते॥

आङः स्थः प्रतिज्ञानइति वक्तव्यम्। अस्ति सकारमातिष्ठते। आगमौ गुणवृद्धी आतिष्ठते। विकारौ गुणवृद्धी आतिष्ठते॥ २२॥

१८५—प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ॥२३॥

प०—प्रकाशनस्थेयाख्ययोः=७।२। च=१।१। अनु०—धातवः। आत्मनेपदम्। स्थः॥

अनुहार होती हैं उक्त अर्थों में अनुपूर्वक हृञ् धातु से आत्मनेपद होता है। तात्छील्य ग्रहण क्यों किया—मानको अनुहरण करता लेता है॥ आशीर्वाद अर्थ में नाथ धातु से आत्मनेपद होता है। सर्पिषो नाथते। इत्यादि में आशीर्वादार्थक नाथ धातु से आत्मनेपद होता है॥ आङ् उपपद हो तो नु और प्रच्छ धातु से आत्मनेपद होता है। जैसे आनुते। इत्यादि में हुआ॥ शप धातु से उपलम्भन प्रकाश करने में आत्मनेपद होता है। जैसे देवदत्त के लिये उलाहना देते हुए कोई अपने अभिप्रायको प्रकाश करता है। उक्त धर्म में शप से आत्मनेपद होता है॥

१८४—सम्। अव। प्र। वि इन उपसर्गों से परे स्थाधातु से आत्मनेपद होता है। संतिष्ठते। इत्यादि में स्थासे आत्मनेपद होता है॥

आङ् उपसर्ग से परे स्थाधातु से प्रतिज्ञा अर्थ में आत्मनेपद होता है। कोई अस् धातु को सकारमात्र मानने की प्रतिज्ञा करता है। कोई गुणवृद्धि आगम हैं ऐसी प्रतिज्ञा करता है। तथा गुणवृद्धि विकार हैं ऐसी कोई प्रतिज्ञा करता है। उक्त अर्थ में आङ्पूर्वक स्थाधातु से आत्मनेपद होता है॥ २२॥

* वाचाशरीरस्पर्शनमुपलम्भनमिति काशिका॥

पदा०—प्रकाशनस्थेयाख्ययोः=स्थेयस्याख्या स्थेयाख्या प्रकाशनं च स्थे-याख्या च तयोः । स्वाभिप्रायाविष्करणं प्रकाशनम् । तिष्ठत्यस्मिन्निति स्थेयः विवादपदनिर्णेता तस्याख्या कथनं तत्र ॥

सूत्रा०—प्रकाशनस्थेयाख्ययोस्तिष्ठतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । राज्ञे तिष्ठ-ते प्रजाजनः । आर्यसमाजे तिष्ठते । कर्णादिषु तिष्ठते दुर्योधनः ॥ २३ ॥

१८६—उदोऽनूर्ध्वकर्म्मणि ॥२४॥

प०—उदः=५ । १ । अनूर्ध्वकर्मणि=७ । १ । अनु०—धातोः । आत्मनेपदम् । स्था-

पदा०—अनूर्ध्वकर्मणि—ऊर्ध्वं च तत्कर्म्मोर्ध्वकर्म नोर्ध्वकर्मानूर्ध्वकर्म तस्मिन् । कर्म्मशब्दोऽत्र क्रियापरः ।

सूत्रा०—उत्पूर्वादनूर्ध्वक्रियायां वर्त्तमानात्तिष्ठतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । मुक्ता-वुत्तिष्ठते । गेहे उत्तिष्ठते । अनूर्ध्वकर्मणीति किम्—आसनादुत्तिष्ठति ।

उदईहायामिति वक्तव्यम् । इह माभूत् । उत्तिष्ठति सेना । इति भाष्यम् । ईहा विशिष्टा चेष्टा कायपरिस्पन्दात्मिकात्र गृह्यते ॥ २४ ॥

१८५—प्रकाशन (अपने अभिप्राय को प्रगट करने) और स्थेयाख्या (जि-सके निमित्त ठहरें उस के कहने अर्थ) में स्थाधातु से आत्मनेपद होता है । जैसे राजा के निकट प्रजाजन ठहरते अर्थात् अपने अभिप्राय का प्रकाश करते हैं । उक्त अर्थ में स्था से आत्मनेपद होता है । आर्यसमाज में स्थिर होता है अर्थात् धर्मादि के संशय को पाकर संदेह निवृत्त कराने को आर्यसमाज में स्थिर होता है । दुर्योधन संशय को पाकर कर्णादिकों में स्थिर होता है । उक्त अर्थ में स्थाधातु से आत्मनेपद होता है ॥ २३ ॥

१८६—उद् जिस के पूर्व और अनूर्ध्व क्रिया में वर्त्तमान ऐसे स्थाधातु से आत्मनेपद होता है । मुक्ति में उठता है । घर में उठता है । उक्त अर्थ में ऊर्ध्व क्रिया नहीं है । अतएव उद्स्था से आत्मनेपद होता है । अनूर्ध्वकर्म ग्रहण क्यों किया ?—आसनादुत्तिष्ठति । कोई आसन से उठता है यहां नहीं होता है । महर्षि कहते हैं—उद्उपसर्ग से परे ईहा चेष्टा अर्थ में स्था से आत्मनेपद कहना चाहिये । यहां न हो । उत्तिष्ठति सेना । अर्थात् उत्पन्न हुई सेना के पूरे और भागी हो चुके हैं । यहां शरीर परिस्पन्दन जैसे मुक्ति में वा घर के कामों में शरीरचेष्टा होती है सो नहीं है किन्तु सेना भरती होने के अनन्तर सेना कार्यों में चेष्टा है अतः आत्मनेपद न हुआ । वार्त्तिक में ईहा विशिष्ट कायपरिस्पन्दनात्मक है वह ग्रहण की जाती है ॥ २४ ॥

१२७—उपान्मन्त्रकरणे ॥२५॥

प०—उपात्=५ । १ । मन्त्रकरणे=७ । १ ॥ अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् । स्थः
पदा०—मन्त्रकरणे=मन्त्रस्य करणं तस्मिन् ॥

सूत्रा०—उपपूर्वान्मन्त्रकरणे वर्त्तमानात् तिष्ठतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते । आग्नेय्याऽऽग्नीध्रमुपतिष्ठते । मन्त्रकरण इति किम्—पतिमुपतिष्ठति यौवनेन । उपाद्देवपूजासङ्गतकरणमित्रकरणपथिष्विति वक्तव्यम् । संगतकरणमुपश्लेषः । विशेषादुपश्लेषणं मैत्रीसम्बन्धो मित्रकरणम् । देवपूजायाम्—आदित्यमुपतिष्ठते । चन्द्रमसमुपतिष्ठते । बहूनामप्यचित्तानामेको भवति चित्तवान् । पश्य वानरसैन्येऽस्मिन् यदर्कमुपतिष्ठते । देवपूजनबुद्ध्योपस्थितो भवतीत्याशयः । मैवं मंस्थाः सचित्तोऽयमेषोऽपि हि यथा वयम् । एतदप्यस्य कापेयं यदर्कमुपतिष्ठति ॥ २ ॥ चापलमेतन्न पूजाबुद्ध्योपस्थित इत्याशयः । सङ्गतकरणे—गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते । उपश्लिष्यतीत्यर्थः । मित्रकरणे रथिकानुपतिष्ठते । अश्वारोहानुपतिष्ठते । मैत्रीक-

---

१२७—उपपूर्वक मन्त्रकरण में वर्त्तमान स्था धातु से आत्मनेपद होता है । ऐन्द्री ऋचा से गार्हपत्य अग्नि का उपस्थान करता है । आग्नेयी से आग्नीध्र अग्नि का उपस्थान करता है । मन्त्रकरण ग्रहण क्यों किया—कोई स्त्री युवावस्था से पति के उपस्थित होती है । उक्त अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता है । देवपूजा संगतकरण मित्रकरण, पथिन् इन अर्थों में उपपूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद होता है ऐसा कहना चाहिये । सङ्गतकरण उपश्लेष (आलिङ्गन) कहाता है । आलिङ्गन के बिना जो मित्रता का सम्बन्ध है वह मित्रकरण कहाता है । देवपूजा में—आदित्यं चन्द्रमसं । आदित्य और चन्द्रमा का उपस्थान करता है । उक्त अर्थ में आत्मनेपद होता है और यहां भी आत्मनेपद होता है—जैसे बहुत बेचित्त वानरों में एक चित्तवान् होता है देख तू जो इस वानर सेना में यह सूर्योपस्थान करता है अर्थात् देवपूजन बुद्धि से उपस्थित होता है । यहां नहीं होता है जैसे वानरों की सेना का वाक्य है—ऐसे मत मानो यह सचित्त है इस में एक भी सचित्त नहीं जैसे हम हैं वैसे ही यह है यह भी इस का वानरपन है जो सूर्योपस्थान करता है । चपलता यह है किन्तु पूजन बुद्धि से उपस्थित नहीं है । इस अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता है । सङ्गतकरण में—गङ्गा यमुना को उपस्थित होती—जा मिलती है । यहां उपश्लेष अर्थ में आत्मनेपद होता है । मि-

कथाः प्रकुरुते । उपयोगो धर्मादिफलको विनियोगः । मुद्राशतं प्रकुरुते ।
विनियुङ्क्ते इत्यर्थः । एतत्किम्-कटं करोति । अकर्त्रभिप्रायार्थोऽयमारम्भः

१९५—अधेः प्रसहने ॥३३॥

प०—अधेः=५।१। प्रसहने=७।१। अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् । कृ

पदा०—प्रसहने=प्रसहनं=प्रसहनं तस्मिन् ।

सू०भा०—प्रसहने वर्त्तमानादधिपूर्वात् कृञ्धातोरात्मनेपदं भवति । प्रसहनं
पराजयो वा । गुरुताडनमधिकुरुते । सहते इत्यर्थः । शत्रुमधिकुरुते । तदुप
स्वाधिकारं करोतीत्यर्थः । प्रसहन इति किम् शब्दानुशासनमधिकरोति । पृथग्यो
गादुपसर्गनियमार्थम् । अकर्त्रभिप्रायार्थोऽयमारम्भः ॥३३॥

१९६—वेः शब्दकर्मणः ॥३४॥

प०—वेः=५।१। शब्दकर्मणः=५।१। अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् । कृञः

पदा०—शब्दकर्मणः=शब्दः कर्म यस्य तस्मात् । कर्मशब्दोऽत्र कारकवच-
नो न क्रियावचनः ॥

सू०भा०—शब्दकर्मकाद् विपूर्वात् करोतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । गायकःस्वरान्

अच्छे प्रकार प्रतिपादन करने को प्रकथन कहते हैं । कथाः० । कथाओं को प्रबन्ध
से कहता है ॥ धर्मादि फल जिस में विद्यमान है उस संकल्प को उपयोग कहते
हैं ॥ मुद्राशत० । सौ रुपये धर्मार्थ संकल्पता है ॥ उक्त अर्थों में कृञ् धातु से
यथोक्त आत्मनेपद होता है ॥ इन अर्थों में कृञ् से आत्मनेपद क्यों कहा-कटं० ।
चटाई बनाता है । यहां पूर्वोक्त अर्थ नहीं हैं इस से आत्मनेपद नहीं होता है ॥३२॥

१९५—प्रसहन अर्थ में वर्त्तमान अधिपूर्वक कृञ् धातु से आत्मनेपद होता
है । क्षमा करने को वा अपराजय को प्रसहन कहते हैं । गुरुताडन० । गुरु से
पाई हुई ताड़ना को सहता है । शत्रुमधि० । शत्रु पर अपना अधिकार जमाता
है उक्त अर्थ में अधिपूर्वक कृञ् से आत्मनेपद होता है । प्रसहन ग्रहण क्यों कि-
या—शब्दानुशासनं० । शब्दानुशासनशास्त्र का आरम्भ करता है । यहां न सहन है
न दूसरे पर अधिकार जमाता है । अतः आत्मनेपद नहीं होता है । यह सूत्र
उपसर्ग नियम के लिये अलग कहा है । और अकर्त्रभिप्रायार्थ भी है ॥३३॥

१९६—शब्दकर्म वाले विपूर्वक कृञ् धातु से आत्मनेपद होता है । गायकः० ।
गाने वाला स्वरों की विकृति करता यथास्थान लगाकर उच्चारण करता है ।

विकुरुते। शब्दकर्म्मणः किम्-चित्तं विकरोति कामः। विकरोति बदरीफलम् ॥३४॥

१९७—अकर्म्मकाच्च ॥ ३५ ॥

प०-अकर्मकात्=५।१। च=१। १। अनु०-धातवः। आत्मनेपदम्। कृञः। वेः।

पदा०-अकर्म्मकात् = अविद्यमानं कर्म्म यस्य तस्मात्।

सूत्रा०-विपूर्वादकर्म्मकात् करोतेर्धातोरात्मनेपदं भवति। विकुर्वते सैन्धवाः। वल्गन्तीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

१९८—सम्माननोत्सञ्जनाचार्य्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ॥ ३६ ॥

प०-सम्माननोत्सञ्जनाचार्य्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु=७। ३। नियः=५।

पदा०-सम्माननोत्सञ्जनाचार्य्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु=सम्यक् मानसं ननम्। सम्माननंचोत्सञ्जनंचाचार्य्यकरणंच ज्ञानंच भृतिश्च विगणनं च व्ययश्च तेषु

सूत्रा०-सम्माननादिष्वर्थेषु गम्यमानेषु णीञ् इत्येतस्माद्धातोरात्मनेपदं भवति सम्यक्सत्कारः सम्माननम्। शास्त्रे शिष्यान् नयते। शास्त्रीयं सिद्धान्तं शिष्योप मापयति तेन शिष्यसम्माननं फलति॥ उत्सञ्जनमुत्क्षेपणम्। कन्दुकमुदानयते। उ त्क्षिपति॥ आचार्य्यकरणमाचार्य्यक्रिया। माणवकमुपनयते। आत्मानमाचा

शब्दकर्मक क्यों कहा है — चित्तं०। काम चित्त को विकारी करता है। विक रोति०। बेरी का फल बेर विकार करता है। यहां शब्दकर्म नहीं इस से आत्मनेपद नहीं होता है ॥ ३४ ॥

१९७ — विपूर्वक अकर्मक करोति धातु से आत्मनेपद होता है। विकु र्वते सैन्धवाः। सिन्धुदेश के घोड़े अच्छे चलते हैं। यहां घोड़ों का आप ही चलना है किन्तु कर्मान्तरकी अपेक्षा नहीं है। अतः इस प्रयोग में विपूर्वक कृञ् धातुसे आत्मनेपद होता है ॥ ३५ ॥

१९८—सम्माननादि अर्थ गम्यमान हों तो णीञ् धातु से आत्मनेपद होता है। अच्छे प्रकार सत्कार सम्मानन कहाता है। शास्त्रे०। शास्त्र में शिष्यों को पहुंचाता है अर्थात् शिष्यों के लिये शास्त्रीयसिद्धान्त सिद्ध करता है इस से शिष्यों का सम्मानन सिद्ध होता है। उठाना उत्सञ्जन कहाता है। कन्दु० गेंद को उठाता है। आचार्य होने की क्रिया आचार्यकरण कहाती है। मा०

र्थी कुर्वन् माणवकं स्वसमीपं प्रापयति ॥ प्रमेयनिश्चयो ज्ञानम् । तत्त्वं नयते । नि-श्चिनोति । वेतनं भृतिः । कर्मकरानुपनयते । वेतनदानेन स्वसमीपं प्रापयति ॥ ऋणादिनिर्यातनं विगणनम् । धनिकोऽर्णं विनयते । कृषीवलः करं विनयते । रा-ज्ञे देयभागं परिशोधयति ॥ व्ययो धर्मादिषु विनियोगः । शतं विनयते । धर्मार्थं शतं विनियुङ्क्ते । एषु किम्-अजां ग्रामं नयति ॥ ३७ ॥

१९८—कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ॥३८॥

प०-कर्तृस्थे=७ । १ । च=१ । १ । अशरीरे=७ । १ । कर्मणि=७ । १ ।
अनु०-णियः । आत्मनेपदम् । नित्यः ॥

पदा-कर्तृस्थे=कर्तरि तिष्ठति । अशरीरे=अविद्यमानं शरीरं यस्य । कर्म-णि=कर्मकारके ॥

सूत्रा०-कर्तृस्थेऽशरीरे कर्मणि नयतेर्धातोरात्मनेपदं भवति ।
क्रोधं विनयते । मोहं विनयते । अपगमयतीत्यर्थः । कर्तृस्थ इति किम्-परस्य क्रोधं विनयति । अशरीर इति किम्-गडुं विनयति । कर्मणि किम्-बुद्ध्या विनयति । स्वरितञि-

---

त० । अपने को आचार्य बनाता हुआ अपने समीप बालक को पहुंचाता है ॥ प्रमेय का निश्चय ज्ञान कहाता है । तत्त्वं० । सिद्धान्त का निश्चय करता है ॥ वे-तन (नौकरी) को कहते हैं । कर्मकरान्० । वेतन देने से अपने समीप कर्म करने वालों को पहुंचाता है ॥ ऋण आदि का निवेरना विगणन कहाता है । धनिकः० । धनी का धन चुकाता है । खेती करने वाला राजा के लिये देने यो-ग्य कर को निपटाता है । धर्मादि कर्मनिमित्त धन निकालना व्यय कहाता है । शतं० । धर्मार्थ सौ रुपये संकल्पता है । इन अर्थों में णीञ् धातु से आत्मने-पद होता । इन सम्मानादि अर्थों में णीञ् से आत्मनेपद क्यों कहा । अजां० । बकरी ग्राम को पहुंचाता है । यहां उक्त अर्थ नहीं अतः परस्मैपद हुआ ॥ ३७ ॥

१९८-कर्ता में स्थित शरीरभिन्न कर्म उपपद हो तो णीञ् धातु से आत्मनेपद होता है क्रोधं० । मोहं० । क्रोध और मोह को दूर करता है । क्रोध और मोह कर्त्ता में स्थित और अशरीर हैं इन के कर्म होने में क्रम से आत्मनेपद हुआ । कर्तृ-स्थपदग्रहण क्यों है— परस्य० । दूसरे के क्रोध को दूर करता है । यहां यद्यपि क्रो-ध कर्म है पर कर्तृस्थ न होने से परस्मैपद होता है । अशरीर-ग्रहण क्यों है—गडुं विनयति । फोड़े को दूर करता है । फोड़ा शरीर का विकार है । कर्मग्रहण क्यों किया—बुद्ध्या० । बुद्धि से दूर करता है (समझ से क्रोधादि को हटाता है)

२०५—अपह्नवे ज्ञः ॥४५॥

प०—अपह्नवे=७ । १ । ज्ञः=५ । १ । अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् ॥

पदा०—अपह्नवे=अपलापे ॥

सू॰भा०—अपह्नवेऽर्थे वर्त्तमानात् जानातेरात्मनेपदं भवति । सोपसर्गोऽयमपह्नवार्थः । शतमपजानीते । सहस्रमपजानीते । अपलपतीत्यर्थः । अपह्नव इति किम्—किञ्चिज्जानाति भोदिन । । शेषात्कर्त्तरीति प्राप्ते वचनम् ॥ ४५ ॥

२०६—अकर्म्मकाच्च ॥४६॥

प०—अकर्म्मकात्=५ । १ । च=१ । १ । अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् । ज्ञः ।

पदा०—अकर्मकात्=अविद्यमानं कर्म यस्य तस्मात् । अकर्मकक्रियावचनादित्यर्थः

सू॰भा०—अकर्मकाज्जानातेरात्मनेपदं भवति । मधुनो जानीतेऽग्निः । मधुनोपायेन प्रवर्त्तते । सर्पिषो जानीतेऽग्निः । सर्पिषोपायेन प्रवर्त्तते । अत्र मध्वादिकरणरूपेण विवक्षितं न ज्ञेयत्वेन । ज्ञोविदर्थस्य करणे इति करणे षष्ठी । अकर्मकादिति किम्—पुत्रं जानाति । पितरं जानाति ॥ ४६ ॥

२०७—संप्रतिभ्यामनाध्याने ॥४७॥

प०—संप्रतिभ्याम्=५।२। अनाध्याने=७।१। अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् । ज्ञः ।

पदा०—सम्प्रतिभ्याम्=सम् च प्रतिश्च ताभ्याम् । अनाध्याने=न आध्यानम् अनाध्यानं तस्मिन् ।

सू॰भा०—संप्रतिभ्यां परस्मादनाध्याने वर्त्तमानाज्जानातेरात्मनेपदं भवति ।

२०५—अपह्नव अर्थ में वर्त्तमान ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है । यह ज्ञा धातु उपसर्ग सहित अपह्नव अर्थ वाला है । शतं० । सैकड़ों झूंठ बकता है । इत्यादि में अपह्नवार्थ ज्ञा धातुमें आत्मनेपद होता है । अपह्नव अर्थ क्यों लिया—किञ्चित्० । यहां ज्ञान अर्थ है इस से नहीं होता है ॥ ४५ ॥

२०६—अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है । मधुन० । मधु उपाय से अग्निप्रदीप्त होता जाना जाता है । इत्यादि में मधु आदि करणरूप से कहे गये किन्तु जानने की योग्यता से नहीं । इससे अकर्मक ज्ञा धातुसे आत्मनेपद होता है । ज्ञो वि० । इस सूत्र से करणमें षष्ठी होती है अकर्मक ग्रहण क्यों किया—पुत्रं जानाति । यहां आत्मनेपद नहीं होता है ॥४६॥

२०७—सम् और प्रति से परे अनाध्यान अर्थ में वर्त्तमान ज्ञा धातुसे आ-

ज्ञानाद्यप्रतीत्यर्थः । एतेष्वर्थेषु किम्-किञ्चिद् वदति ॥ ४८ ॥

२०९—व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥ ४९ ॥

प०-व्यक्तवाचाम्=६ । ३ । समुच्चारणे=७ । १ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् । वदः ॥

पदा०-व्यक्तवाचाम्=व्यक्ता वाग्येषां त इमे व्यक्तवाचो मनुष्यास्तेषाम् । समुच्चारणे=सहोच्चारणे ॥

सूत्रा०-व्यक्तवाचां समुच्चारणे वर्त्तमानाद्वद इत्येतस्माद्धातोरात्मनेपदं भवति । संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः । व्यक्तवाचां किम्-संप्रवदन्ति खगाः ॥ वरतनु ! संप्रवदन्ति कुक्कुटाः । समुच्चारणे किम्-ब्राह्मणो वदति । नन्वयं वदो व्यक्तायां वाच्येव पठ्यते किं व्यक्तवाचामिति विशेषणेन प्रसिद्धानामुपसङ्ग्रहार्थं तेन प्रसिद्धानां ब्राह्मणादीनां मनुष्याणां ग्रहणं तेषां सहोच्चारणे यथा स्यात् ॥ ४९ ॥

२१०—अनोरकर्म्मकात् ॥ ५० ॥

प०-अनोः=५ । १ । अकर्म्मकात्=५ । १ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् । वदः । व्यक्तवाचाम् ।

पदा०-अकर्म्मकात्=अविद्यमानं कर्म यस्य तस्मात् ।

स्पष्टार्थों को एकदम से कहलाता है । उक्त अर्थों में वद् से आत्मनेपद होता है । इन अर्थों में क्यों कहा-किञ्चिद्वदति । कुछ कहता है । यहां उक्त अर्थों के न होने से परस्मैपद होता है ॥ ४८ ॥

२०९—प्रकट वाणी वाले मनुष्यों के एकसाथ उच्चारण में वद् इस धातु से आत्मनेपद होता है । संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः । ब्राह्मणलोग अच्छे प्रकार से एक साथ कह रहे हैं । यहां उक्त अर्थ में वद्धातु से आत्मनेपद होता है । व्यक्तवाचा-ग्रहण क्यों किया-संप्रवदन्ति खगाः । पक्षी एकसाथ प्रकार से बोल रहे हैं । वरतनु संप्रवदन्ति कुक्कुटाः । हे सुन्दर शरीरवाली ! मुर्गे एकसाथ प्रकार से बोल रहे हैं । समुच्चारण-ग्रहण क्यों किया ब्राह्मणो वदति । एक ब्राह्मण कहता है । उक्त अर्थों में परस्मैपद होता है । शङ्का यह है कि-यह वद्धातु व्यक्तवाचों में ही पढ़ा है फिर 'व्यक्तवाचां, इस विशेषण से क्या प्रयोजन है । उत्तर-प्रसिद्धों के उपग्रह करने के लिये है इस से प्रसिद्ध वाणी वाले ब्राह्मणादि मनुष्यों का ग्रहण है उन के साथ उच्चारण में जिस प्रकार आत्मनेपद हो ॥ ४९ ॥

२१२—अवाद्ग्रः ॥ ५२ ॥

प०—अवात्=५ । १ । ग्रः=५ । १ । अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् ।

पदा०—ग्रः=गिरतेर्ग्रहणं न गृणातेस्तस्यावपूर्वस्य प्रयोगाभावात् ।

सूत्रा०—अवपूर्वाद् गिरतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । अवगिरते । अवगिरेते । अवगिरन्ते । इत्यादि । अवादितिकिम्—गिरति ॥ शेषात्कर्त्तरीत्यस्यापवादः । गिरतेरिति वक्तव्यम् । गृणातिस्तु अवपूर्वो न प्रयुज्यत इति भाष्यम् ॥ ५२ ॥

२१३—समः प्रतिज्ञाने ॥ ५३ ॥

प०—समः=५ । १ । प्रतिज्ञाने=७ । १ । अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् । ग्रः ॥

सूत्रा०—सम्पूर्वात्प्रतिज्ञाने वर्त्तमानाद्गिरतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । प्रतिज्ञानमभ्युपगमः । शतं संगिरते । नित्यं वेदपठनं संगिरते । प्रतिज्ञाने किम्—संगिरति ग्रासम् ॥ ५३ ॥

२१४—उदश्चरः सकर्म्मकात् ॥ ५४ ॥

प०—उदः=५ । १ । चरः=५ । १ । सकर्म्मकात्=५ । १ । अनु०—धातवः । आत्मनेपदम् ।

पदा०—सकर्म्मकात्=कर्म्मणा सह वर्त्तमानः सकर्म्मकस्तस्मात् ॥

सूत्रा०—उत्पूर्वात् सकर्म्मकाच्चर इत्येतस्मादात्मनेपदं भवति । धर्म्ममुच्चरते ।

[illegible]

[illegible]

अव पहल क्योंकिया—गिरति । यहां परस्मैपद होता है । शेषात्कर्त्तरि० इस का यह अपवाद है । वार्त्तिककार कहते हैं—कि गिरति (गृ निगरणे) इस धातु से आत्मनेपद करना चाहिये । गृणाति (गृ शब्दे) धातु का अव पूर्वक प्रयोग नहीं होता है ॥ ५२ ॥

२१३—प्रतिज्ञा अर्थ में वर्तमान सम्पूर्वक गिरति धातु से आत्मनेपद होता है । निश्चित सिद्धान्त को प्रतिज्ञा कहते हैं. । शतं संगिरते । सौ की प्रतिज्ञा करता है । नित्य वेदपठनं संगिरते । नित्य वेद पढ़ने की प्रतिज्ञा करता है । प्रतिज्ञाअर्थग्रहण क्यों किया—संगिरति ग्रासम् । ग्रास (खाने) को अच्छी तरह निगलता है । यहां परस्मैपद होता है ॥ ५३ ॥

२१४—उत्पूर्वक सकर्मक चर धातु से आत्मनेपद होता है । धर्म्ममुच्चरते । धर्म का उल्लङ्घन कर जाता है । गुरुवचनमुच्चरते । गुरुवचन का उल्लङ्घन कर जाता है । सकर्मकग्रहण क्यों किया—बाष्पमुच्चरति । भाफ ऊपर को जाती है ॥५४॥

२१५–समस्तृतीयायुक्तात् ॥५५॥

प०–समः=५।१। तृतीयायुक्तात्=५ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् । चरः।

पदा०—तृतीयायुक्तात्=तृतीयया विभक्त्या युक्तस्तस्मात् ॥

सूत्रा०—सम् पूर्वात् तृतीयायुक्ताच्चरतेर्धातोरात्मनेपदं भवति। अश्वेन संचरते । रथेन संचरते । तृतीयायुक्तात् किम्–उभौ लोकौ संचरति कश्यपो महर्षिः। यद्यप्यत्रोभ्यां लोकाभ्यां सञ्चरतीत्ययमर्थः संचरणस्य तथापि तृतीया न श्रूयते इति प्रत्युदाह्रियते ॥ ५५ ॥

२१६–दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ॥५६॥

प०—दाणः=५ । १ । च=१ । १ । सा=१ । १ । चेत्=१ । १ । चतुर्थ्यर्थे=७ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् । समः । तृतीयायुक्तात् ॥

पदा०— चतुर्थ्यर्थे=चतुर्थ्या अर्थश्चतुर्थ्यर्थस्तत्र ॥

सूत्रा०—सम्पूर्वात्तृतीयायुक्ताद् दाण् इत्येतस्मादात्मनेपदं भवति सा तृतीया यदि चतुर्थ्यर्थे भवति। दास्या संयच्छते कामुकः । दास्यै ददातीत्यर्थः । चतुर्थ्यर्थे किम्–पाणिना संप्रयच्छति । समः प्रशब्देन व्यवधाने कथमात्मनेपदं भवति । समः इति विशेषणे षष्ठी न पञ्चमी ॥

२१५–सम्पूर्वक तृतीयाविभक्तियुक्त चरधातु से आत्मनेपद होता है। अश्वेन सञ्चरते। अश्व से संचार करता है। यहां तृतीयायुक्तचर से आत्मनेपद होता है। तृतीयायुक्तात्–ग्रहण क्यों किया–उभौ लोकौ सञ्चरति कश्यपो महर्षिः। कश्यप महर्षि जी दोनों लोकों का संचरण करते हैं। यद्यपि यहां "उभाभ्यां लोकाभ्यां" दोनों लोकों से सचार करते हैं यही संचरण का अर्थ है तृतीया नहीं सुनी जाती अर्थात् वाक्य में उभौ लोकौ–यह द्वितीयान्तपद दिया है इस से "उभौ लोकौ संचरति" यह प्रत्युदाहरण दिया गया है ॥ ५५ ॥

२१६–सम्पूर्वक तृतीयायुक्तदाण्धातु से आत्मनेपद होता है। वह तृतीया यदि चतुर्थी के अर्थ में वर्त्तमान हो तो। दास्या संयच्छते कामुकः। दासी के लिये कामीजन देता है। चतुर्थी के अर्थ में क्यों कहा–पाणिना संप्रयच्छति। हाथ से देता है। संप्रयच्छते। यहां सम् से प्र शब्द के व्यवधान में कैसे आत्मनेपद होता है "समस्तृतीया॰" इस सूत्र में 'समः' यह विशेषण में षष्ठी है पञ्चमी है। अर्थात् सम् सम्बन्धी दाण् धातु से आत्मनेपद होता है ॥

कथं नाम तृतीया चतुर्थ्यर्थे स्यात् । एवं तर्हि शिष्टव्यवहारेऽनेन तृतीया च विधीयते । आत्मनेपदं च । इति भाष्यम् ॥ ५६ ॥

२१७—उपाद्यमः स्वकरणे ॥५७॥

प०—उपात्=५।१। यमः=५।१। स्वकरणे=७।१। अनु०—धातवः। आत्मनेपदम् ॥

पदा०—स्वकरणे=पाणिग्रहणविशिष्टस्वीकारे न स्वीकारमात्रे ॥

सूत्रा०—स्वकरणे वर्त्तमानाद्यम इत्येतस्मादात्मनेपदं भवति । भार्यामुपयच्छते । स्वकरण इति किम्-परस्य भार्यामुपयच्छति ॥ ५७ ॥

२१८—ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ॥५८॥

प०—ज्ञाश्रुस्मृदृशाम्=६।३। सनः=६।१। अनु०—धातवः। आत्मनेपदम् ।

पदा०—ज्ञाश्रुस्मृदृशाम्=ज्ञाश्च श्रुश्च स्मृ च दृश् च तेषाम् ।

सू०—सन्नन्तानां ज्ञाश्रुस्मृदृशामात्मनेपदं भवति । धर्मं जिज्ञासते । गुरुं शुश्रूषते । नष्टं सुस्मूर्षते । नृपं दिदृक्षते । अपह्नवे ज्ञ इति त्रिभिः सूत्रैर्ज्ञानातेरात्मनेपदं विहितं श्रुदृशोरपि समो गम्यृच्छिभ्यामित्यत्र वार्त्तिककारेण विहितं तत्र तत्र पूर्ववत्सन इति सिद्धमात्मनेपदं ततोऽन्यथानेन विधीयते । स्मरतेरप्राप्त एव विधानम् ।

भाष्यकार कहते हैं-कैसे तृतीया चतुर्थी के अर्थ में हो। ऐसे है तो शिष्टव्यवहार में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विधान की जाती और आत्मनेपद भी विधान किया जाता है ॥ ५६ ॥

२१७—पाणिग्रहणविशिष्टस्वीकार अर्थ में यम धातु से आत्मनेपद होता है। भार्यामुपयच्छते। भार्या का पाणिग्रहण करता है। स्वकरणग्रहण क्यों किया—परस्य भार्यामुपयच्छति। दूसरे की भार्या का स्वीकार करता है। यहां पाणिग्रहण नहीं इससे आत्मनेपद नहीं होता है ॥ ५७ ॥

२१८—सन्नन्त ज्ञा श्रु स्मृ दृश् इन के लकार के स्थान में आत्मनेपद होता है। धर्मं जिज्ञासते। धर्म के जानना चाहता है। गुरुं शुश्रूषते। गुरु की शुश्रूषा करना चाहता है। नष्टं सुस्मूर्षते। नष्ट हुये के स्मरण करना चाहता है। नृपं दिदृक्षते। राजा के देखना चाहता है। अपह्नवे ज्ञः १।३।४४। अकर्म० १।३।४५ संप्रति० १।३।४६। इन तीन सूत्रों से ज्ञा धातु से आत्मनेपद विधान किया। समो गम्यृ०—इस सूत्र में वार्त्तिककार ने श्रु दृश् को भी आत्मनेपद विधान किया। जहां जहां इन धातुओं से सन्नन्तविषय में पूर्ववत्सनः—इस से आत्मनेपद सिद्ध है उससे अन्यत्र ज्ञा श्रु दृश्—इस सूत्र से विधान किया जाता है।

२२१-शदेः शितः ॥ ६० ॥

प०-शदेः=५ । १ । शितः=६ । १ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् ।

सूत्रा०-शित्प्रत्ययनिमित्तस्य शद्लृ इत्येतस्माद्धातोरात्मनेपदं भवति । शीयते । शी-येते । शीयन्ते । शितः किम्-शत्स्यति । अशत्स्यत । शिशत्सति ॥

प०-कृताकृतप्रसङ्गि नित्यं तद्विपरीतमनित्यम् ॥ १ ॥ शब्दान्तरस्य च प्राप्नु-वन् विधिरनित्यः ॥ २ ॥ शब्दान्तरात्प्राप्नुवतः शब्दान्तरे च प्राप्नुवतश्चानित्यत्वम् ॥ ३ ॥ लक्षणान्तरेण प्राप्नुवन् विधिरनित्यः ॥ ४ ॥ क्वचित् कृताकृतप्रसङ्गित्वमात्रेणापि नित्यता ॥ ५ ॥ यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनित्यम् ॥ ६ ॥ यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते तदप्यनित्यम् ॥ ७ ॥ स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यः ॥ ८ ॥ अस्मिन्नर्थेऽत्र ध्वनिता इमाः परिभाषाः ॥ ६० ॥

२२२-म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥ ६१ ॥

प०-म्रियतेः=५ । १ । लुङ्लिङोः=६ । २ । च=१ । १ । अनु०-धातवः आत्मनेपदम् । शितः ॥

षष्ठ्या०-लुङ्लिङोः=लुङ्श्च लिङ्चानयोः ।

सूत्रा०-मृङ् इत्येतस्माद्धातोर्लुङ्लिङोः शित्संबन्धिनश्च परस्य लस्यात्मनेपदं भवति नान्यत्र । ङित्वादात्मनेपदे सिद्धे नियमार्थमिदम् । अमृत । मृषीष्ट ।

२२१-शित्प्रत्ययसम्बन्धी शद्लृ धातु से आत्मनेपद होता है । शीयते । शीयेते । इत्यादि शप् विकरण विषयक । लट् । लोट् । लङ् । विधिलिङ् । इन लकारों में आत्मनेपद अन्यत्र परस्मैपद होता है । शित्-ग्रहण क्यों किया-शत्स्यति । अशत्स्यत् । इत्यादि लकारों में परस्मैपद ही होता है । शिश-त्सति । यहां सन्नन्त में पूर्ववदात्मनेपद विधान होने में धातु से पूर्व शित् प्रत्यय के बिना शद्लृ धातु परस्मैपदी है इस से परस्मैपद ही होता है ॥ ६० ॥

२२२-मृङ् धातु से परे जो लुङ् लिङ् लकार उनके स्थानमें तथा शित्-सम्बन्धी मृङ् धातु से परे जो लकार उस के स्थान में आत्मनेपद होता है अ-न्यत्र नहीं । मृङ् के ङित् होने से आत्मनेपद सिद्ध है अतएव यह नियमार्थ सूत्र है । लुङ् में । अमृत । यहां ह्रस्वात् से परे सिच् लुक् (८ । २ । २७) होता है । लिङ् में । मृषीष्ट । यह आशीर्लिङ् में होता है । विधिलिङ् में तो शित्प्रत्यय से

सूत्रा०-अनुप्रयोगात् कृञ्धातोराम्प्रकृत्या तुल्यमात्मनेपदं भवति । अकर्त्रभिप्रायार्थमिदम् । एधाञ्चक्रे । ईहाञ्चक्रे अत्र सूत्रे पूर्ववदित्यनुवर्त्य वाक्यभेदेन नियमः । पूर्ववदेवात्मनेपदं भवति न तु तद्विपरीतम् ॥ तेन कर्त्तृगामिन्यपि क्रियाफले । उदुम्भाञ्चकारेत्यादौ नात्मनेपदम् ॥ कृञः किम्-ईहामास । कथं चास्य अनुप्रयोगो भवति । प्रत्याहारग्रहणं हि तत्र विज्ञायते । अथेह कस्मान्न भवति । उदुम्भाञ्चकार । उदुब्जाञ्चकार । इदं नियमार्थं भविष्यति । आम्प्रत्ययवदेवेति कथम् । पूर्ववदितिनिवर्त्तते । आम्प्रत्ययवत् पूर्ववच्चेति भाष्ये ॥६३॥

२२४-प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ॥६४॥

प०-प्रोपाभ्याम्=५ । २ । युजेः=५ । १ । अयज्ञपात्रेषु=७ । ३ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् ।

पदा०-प्रश्च उपश्च ताभ्याम् । अयज्ञपात्रेषु=यज्ञस्य पात्राणि-यज्ञपात्राणि न यज्ञपात्राणि=अयज्ञपात्राणि तेषु ।

सूत्रा०-प्र उपइत्येवं पूर्वादयज्ञपात्रेषु वर्त्तमानाद् युजिर् इत्येतस्मादात्मने-

---

२२३-अनुप्रयोग कृञ् धातु से आम्प्रकृति के तुल्य आत्मनेपद होता है । यह सूत्र अकर्त्रभिप्रायार्थ है कर्त्तृगामीक्रियाफल में तो आत्मनेपद सिद्ध ही था । एधाञ्चक्रे । इत्यादि । इस सूत्र में पूर्ववत्-इस पद की अनुवृत्ति करके वाक्यभेद से नियम सिद्ध होता है अर्थात् पूर्ववत्-ही आत्मनेपद हो तद्वि-परीत न हो इस से कर्त्तृगामी क्रियाफल में भी । उदुम्भाञ्चकार । इत्यादि में आत्मनेपद नहीं होता है भाष्यकार कहते हैं इस सूत्र में कृञ् ग्रहण क्योंकि-या-ईहामास यहां अस् धातु के अनुप्रयोग में आत्मनेपद नहीं होता है । पर शङ्का यह है कि आमन्त से अस् का अनुप्रयोग कैसे होता है यहां कृञ्चानुप्रयु-ज्यते लिटि । इस सूत्र में प्रत्याहारग्रहण जाना जायगा अर्थात् कृभ्वस्तियोगे० इस सूत्र की कृ से कृञो द्वितीय० (५ । ४ । ५८) इस सूत्र के ञ् तक प्रत्याहार मानेंगे । अब «उदुम्भाञ्चकार» यहां आत्मनेपद क्यों नहीं होता है । यह नियमार्थ होजायगा । «आम्प्रत्ययवत्» कैसे पूर्ववत् यह पद पीछे वर्त्तमान है आम्-प्रकृति के तुल्य आत्मनेपद हो वह पूर्ववत् हो आम् प्रत्यय से पूर्व धातु से जिस प्रकार का आत्मनेपद होता हो वैसा हो ॥ ६३ ॥

२२४-प्र और उप यह पूर्व जिस के ऐसे यज्ञपात्र से भिन्न अर्थ में वर्त्तमान युजिर् धातु से परे आत्मनेपद होता है । अकर्त्रभिप्रायार्थ यह है कर्त्तृगामी

पदं भवति । आर्द्रविभागार्थमिदम् । प्रयुङ्क्ते । उपयुङ्क्ते । अयज्ञपात्रेषु किम्-द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति । स्वराद्युपसृष्टादिति वक्तव्यम् । उद्युङ्क्ते । अनुयुङ्क्ते । स्वराद्यन्तोपसृष्टादिति वक्तव्यम् । अनुयुङ्क्ते । प्रयुङ्क्ते ॥६४॥

२२५–समः क्ष्णुवः ॥६५॥

प०–समः=५ । १ । क्ष्णुवः=५ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् ॥

सू०–सम्पूर्वात् क्ष्णु इत्येतस्माद्धातोरात्मनेपदं भवति । संक्ष्णुते । संक्ष्णुवाते संक्ष्णुवते । शस्त्रम् । ननु समोगम्यृच्छिभ्यामित्यत्रैव किं न पठितस्तत्राकर्मकादिति वर्त्तते सकर्मकविषयश्चायम् ॥ ६५ ॥

२२६–भुजोनवने ॥६६॥

प०–भुजः=५ । १ । अनवने=७ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् ॥

पदा०–अवनं रक्षणं न अवनमनवनं भोजनम्=तस्मिन् । इह अनवनप्रतिषेधात् भुज इति रौधादिकस्यैव ग्रहणं न कुटिलार्थस्य तौदादिकस्य ॥

सूत्रा०–अनवने भोजनेऽर्थे वर्त्तमानाद् भुजधातोरात्मनेपदं भवति । अन्नं भुङ्क्ते । अनवन इति किम्–अग्निं भुनक्ति । कौटिल्ये विभुजति पाणिम् ॥६६॥

क्रियाफल में तो आत्मनेपद होता ही है । प्रयुङ्क्ते । अयज्ञ पात्र अर्थ क्यों ग्रहण किया–दो दो यज्ञपात्रों को जोड़ता है । वार्त्तिककार कहते हैं स्वरादि उपसर्गयुक्त युजिर् धातु से आत्मनेपद होना चाहिये । उद्युङ्क्ते । स्वरादि हो वा स्वरान्त हो ऐसे उपसर्ग से युक्त युजिर् धातु से आत्मनेपद होना चाहिये । अनुयुङ्क्ते । इत्यादि ॥ ६४ ॥

२२५–सम्पूर्वक क्ष्णु इस धातु से आत्मनेपद होता है । संक्ष्णुते शस्त्रम् । शङ्का होती है–समोगम्य० सूत्र में क्ष्णु को क्यों न पढ़ दिया वहां 'अकर्मकात्' इस की अनुवृत्ति है इस में नहीं पड़ा क्योंकि–क्ष्णु सकर्मकविषय धातु है ॥६५॥

२२६–अनवने अर्थात् भोजन अर्थ में वर्त्तमान भुज धातु से आत्मनेपद होता है । अन्नं भुङ्क्ते । अनवन ग्रहण क्यों किया । अग्निं भुनक्ति । पालती है । यहां पालना अर्थ है इस में परस्मैपद होता है । यहां अनवन इस प्रतिषेध से रुधादिगणपठित भुज धातु का ग्रहण है क्योंकि प्रतिषेध से भोजन अर्थ इस का लिया जाता है इस से तुदादिगणपठित कौटिल्य अर्थ वाले भुज धातु का ग्रहण यहां नहीं है अतएव कौटिल्य अर्थ में–विभुजति पाणिम् । ऐसा ही प्रयोग होता है ॥ ६६ ॥

२२७-णेरणौ यत् कर्म णौ चेत् स कर्त्तानाध्याने ॥६७॥

प०-णेः=५।१। अणौ=७।१। यत्=१।१। कर्म=१।१। णौ=७।१। चेत्=१।१। सः=१।१। कर्त्ता=१।१। अनाध्याने=७।१। अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् ॥

पदा०-अणौ=न णिः अणिस्तस्मिन् । अनाध्याने=उत्कण्ठापूर्वकस्मरणमाध्यानं न आध्यानमनाध्यानं तस्मिन् । णिचश्चेति सिद्धेऽकर्त्रभिप्रायार्थमिदम् ॥

सूत्रा०=एयन्तादात्मनेपदं भवति । अणौ यत्कर्म णौ चेत्तदेव कर्म सकर्त्ता च भवति । अनाध्याने । आध्यानेन भवति । पश्यन्ति भृत्या राजानं दर्शयते राजा स्वयमेव । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । आरोहयते हस्ती स्वयमेव । णेरिति किम्-आरोहयमाणो हस्ती साध्वारोहति । अणाविति किम्-गणयति गणं गोपालः । गणयति गणः स्वयमेव । कर्मग्रहणं किम्-लुनाति दात्रेण । लावयति दात्रं स्वयमेव । अणौ यत्कर्म णौ चेदिति किम्-हस्तिनमारोहन्ति मनुष्याः । हस्तीस्थलमारोहयति म-

---

भा०-ण्यन्त धातु में आत्मनेपद होता है । अण्यन्तावस्था में जो कर्मण्यन्तावस्था में वही कर्म और वही कर्त्ता हो तो अनाध्यान अर्थ में । उत्कण्ठापूर्वक स्मरण आध्यान कहाता है उस को छोड़ि के । पश्यन्ति भृत्या राजानम् । दर्शयते राजा स्वयमेव । भृत्य राजा को देखते । देखते हुये भृत्यों को राजा आप ही दीखता है । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः आरोहयते हस्ती स्वयमेव । पीलवान हाथी को आरोहण करते चढ़ते हैं हाथी आप चढ़ाता है । यहां अण्यन्तावस्था में जो कर्म राजा वा हाथी हैं वही ण्यन्त में कर्त्ता और आप ही कर्म रहते हैं इस से आत्मनेपद होता है । णि ग्रहण क्यों किया-आरोहयमाणो हस्ती साध्वारोहति । हस्तिपका हस्तिनमारोहन्ति, आरोहतोहस्तिपकान् हस्ती स्वयमेव आरोहयते स आरोहयमाणो हस्ती कुड्यादिकं साध्वारोहति । हस्तिपक हाथी पर चढ़ते उन को हाथी आप चढ़ाता वह चढ़ाता हुआ हाथी टीला आदि पर अच्छे चढ़ता है । यहां «आरोहति» पद णिच् रहित है इस से आत्मनेपद नहीं होता है । गणयति गणं गोपालः । गोपाल गण को गिनता है गण आप गिना जाता है । यहां गण धातु पूर्व ही ण्यन्त है इस से आत्मनेपद न हुआ । कर्मग्रहण क्यों किया-लुनाति दात्रेण लावयति दात्रं स्वयमेव । दातड़े से काटता । दांतड़ा आप काटता है । यहां दात्र करण है इस से «लावयति» परस्मैपद होता है । अणि में जो कर्म णि में वह पद क्यों कहा-हस्तिनमारोहन्ति मनुष्याः । हस्तीस्थलमारोहयति मनुष्यान् । मनुष्य हाथी पर चढ़ते वह हाथी मनुष्यों को स्थल पर चढ़ाता है । यहां अणि में हाथी णि में स्थल कर्म है इस से आ-

नत्वात् । स कर्त्तेति किम्-आरोहयन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । अनाध्याने किम्-स्मरति वनगुल्मं कोकिलः । स्मरयति वनगुल्मः कोकिलं स्वयमेव । कर्मस्थक्रियके-षु कर्मस्थभावकेषु च धातुषु कर्मवत् कर्मणा तुल्य क्रिय इति कर्मवद् भवत्यात्म-नेपदं भवति णेरणाविति सूत्रं तु कर्त्तस्थक्रियकार्थं कर्तृस्थभावकार्थं कृतम् ॥६७॥

२८८-भीस्म्योर्हेतुभये ॥६८॥

प०-भीस्म्योः=६।२ । हेतुभये=७।१। अनु०-णेः । आत्मनेपदम् । ६८ ॥

पदा०-भीस्म्योः-भीश्च स्मिश्च तौ तयोः । हेतुभये-हेतोर्भयं हेतुभयं तस्मिन्। अकर्त्रभिप्रायार्थोऽयमारम्भः ।

सूत्रा०-ञिभी भिये ष्मिङ् इत्येताभ्यां णयन्ताभ्यामात्मनेपदं भवति । हेतुप्रयो-जककर्त्ताऽन्तकारवाच्यस्ततश्चेद्भयं भवति । भयग्रहणं विस्मयस्याप्युपलक्षणम् । जटिलो भीषयते । मुण्डो भीषयते । जटिलोविस्मापयते । मुण्डो विस्मा-पयते । हेतुभये किम्-कुञ्चिकयैनं भाययति । रूपेण विस्मापयति । अत्र कु

त्मनेपद न हुआ-हस्ती आरोहति तं हस्तिपका आरोहयन्ति । यहां अणि में हाथी और णि में हस्तिपक कर्त्ता है । इस से आत्मनेपद न हुआ । अनाध्यान ग्रहण क्यों है । स्मरतिवनगुल्मंकोकिलः । स्मारयतिवनगुल्मंकोकिलं स्वयमेव । कोकिला वनगुल्म का स्मरण करती वनगुल्मकोकिला को आप ही स्मरण कराता है । यहां उत्कण्ठा पूर्वक स्मरण है इस से परस्मैपद न हुआ । कर्मस्थ जिन की क्रिया वा कर्मस्थ जिन का भाव है उन धातुओं में कर्मवत् अतिदेश से आत्मनेपद होता है जैसे । भिनत्ति काष्ठं देवदत्तः भिद्यते काष्ठं स्वयमेव । पचत्योदनं देवदत्तः । प-च्यते ओदनस्स्वयमेवेत्यादि । णेरणौ० यह सूत्र तो कर्तृस्थ क्रिया वाले वा कर्तृस्थ भाव वाले धातुओं के अर्थ किया है उक्त प्रकार के धातुओं का निर्णय यह है—

कर्मस्थः पचतेर्भावः कर्मस्था च भिदेः क्रिया । मासासिभावः कर्तृस्थः कर्तृ-स्था च गमेः क्रिया ॥ ६७ ॥

२८८-णयन्त ञि भी स्मिङ् धातुओं से आत्मनेपद होता है हेतु अर्थात् प्र-योजक लकार से कहने योग्य जो कर्त्ता उस से भय हो तो । यहां भयग्रहण विस्मय का भी उपलक्षण है । जटिलो भीषयते । मुण्डोभीषयते । बालक डरता है जटिल वा मुण्ड डरवाते हैं । यहां जटिल और प्रयोजक कर्त्ता भय देने वाले हैं इस से भी स्मि से आत्मनेपद हुआ । इसी प्रकार जटिलो विमुण्डोविस्मा-पयते । स्मापयते । यहां जटिल और मुण्ड विस्मय के देने वाले हैं इस से आ-त्मनेपद हुआ । हेतुभय ग्रहण क्यों किया-बालो बिभेति बिभ्यन्तं बालं जटिला

मधिगच्छति । श्येनो वर्तिकामुल्लापयते । स्यग्भावयति । बालमुल्लापयते वञ्च-यतीत्यर्थः । सम्माननादिषु किम्-कस्त्वामुल्लापयति ॥७०॥

२३१–मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे ॥७१॥

प०–मिथ्योपपदात्=५ । १ । कृञः=५ । १ । अभ्यासे=७ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् । णेः ॥

पदा०–मिथ्या उपपदं यस्य तस्मात् । अकर्त्रभिप्रायार्थमिदम् ॥

सू०–मिथ्योपपदाण्ण्यन्तात् डुकृञ् इत्येतस्माद् धातोरात्मनेपदं भवत्यभ्यासे पुनः पुनरावृत्तिरभ्यासः । पदं मिथ्या कारयते । स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयति । मिथ्योपपदात् किम्–यथार्थं पदं कारयति । कृञः किम्–पदं मिथ्या वाचयति । अभ्यासे किम्–पदं सकृन्मिथ्या कारयति ॥ ७१ ॥

२३२–स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥७२॥

प०–स्वरितञितः=५ । १ । कर्त्रभिप्राये=७ । १ । क्रियाफले=७ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् ।

पदा०–ञ् इत् यस्य स ञित् । स्वरितश्च ञिच्चानयोस्समाहारस्तस्मात् । कर्त्रभिप्राये=कर्तारमभिप्रैति तस्मिन् । क्रियाफले=क्रियायाः फलं क्रियाफलं तत्र ॥

सू०–कर्तृगामिनि क्रियाफले स्वरितेतो ञितश्चात्मनेपदं भवति । यजमा-

---

शिकार बटेर को कायर करता है । बालमुल्लापयते । बालक को ठगता है इन अर्थों में आत्मनेपद होता है । संमाननादि यहण क्यों किया । कस्त्वामुल्ला-पयति । कौन तुम्हें बकाता है । यहां सम्माननादि अर्थों के न होने से आत्म-नेपद न हुआ ॥ ७० ॥

२३१–मिथ्या शब्दोपपद ण्यन्त जो डुकृञ् धातु उस से आत्मनेपद होता है अभ्यास अर्थ में । बार २ आवृत्ति होना अभ्यास कहाता है । पदं मिथ्या कारयते । पद को मिथ्या कराना अर्थात् स्वरादि से दूषित बार २ पुकराता है । मिथ्या ग्रहण क्यों किया–यथार्थं पदं कारयति । यथार्थ पदोच्चारण कराता है । कृञ् ग्रहण क्यों किया । पदं मिथ्या वाचयति । पद को बार २ मिथ्या बचवाता है । यहां कृञ् से आत्मनेपद न हुआ । अभ्यास ग्रहण क्यों किया–पदं सकृन्मिथ्या कारयति । पद को एकबार मिथ्या उच्चारण कराता है ॥ ७१ ॥

२३२–कर्तृगामी कर्त्ता के अभिप्राय वाले क्रियाफल में स्वरितेत् और ञित् धातु से आत्मनेपद होता है । यजमानो यजते । यज्ञकर्त्ता यज्ञ करे

नो यजते । देवदत्तः कुरुते । अत्र क्रियाफलं कर्त्तारमभिप्रैति । कर्त्रभिप्राये किम्-याजको यजति । देवदत्तः कार्यं करोति । यद्यपि दक्षिणा वेतनं च कर्तुः फलमिहास्ति तथापि न तत् प्रधानम् न तदर्थः क्रियारम्भश्च ॥ ७२ ॥

२३३-अपाद्वदः ॥७३॥

प०-अपात्=५ । १ । वदः=५ । १ । अनु० धातवः । आत्मनेपदम् । कर्त्रभिप्राये । क्रियाफले ॥

सू०-कर्तृगामिनि क्रियाफलेऽपपूर्वाद् वदतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । धनकामोऽपवदते । अन्याय भाषते इत्यर्थः । कर्तृगामिनि किम्-धनकामोऽपवदति परार्थमन्यायं भाषते ॥ ७३ ॥

२३४-णिचश्च ॥७४॥

प०-णिचः=५ । १ । च=१ । १ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् । कर्त्रभिप्राये । क्रियाफले ॥

सू०-कर्तृगामिनि क्रियाफले णिजन्ताद्धातोरात्मनेपदं भवति । कारयते । पाचयते । कर्तृगामिनीति किम्-कटं कारयति ॥ ७४ ॥

२३५-समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥७५॥

प०-समुदाङ्भ्यः=५ । ३ । यमः=५ । १ । अग्रन्थे=७ । १ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् । कर्त्रभिप्राये । क्रियाफले ॥

रहा है । देवदत्तः कुरुते । देवदत्त काम कर रहा है इत्यादि प्रयोगों में कर्तृगामी क्रियाफल होने से आत्मनेपद होता है क्योंकि यहां क्रियाफल कर्त्ता को चाहता है । कर्त्रभिप्राये क्यों कहा-याजको यजति । यज्ञ कराने वाला यज्ञ कर रहा है=अर्थात् दूसरे के लिये करता है । देवदत्तः कार्यं करोति । देवदत्त काम करता है । यद्यपि यहां दक्षिणा और वेतन करने वाले को फल है तथापि वह प्रधान नहीं है और न उस के लिये क्रियारम्भ है इससे आत्मनेपद नहीं होता है ॥७२॥

२३३-कर्तृगामी क्रियाफल में अपपूर्वक वद धातु से आत्मनेपद होता है । धनकामोऽपवदते । धन की कामना करने वाला अन्याय बोलता है । कर्तृगामी क्रियाफल यहण क्यों किया-धनकामोऽपवदति । धन चाहने वाला दूसरे के लिये अन्याय बक रहा है । यहां परस्मैपद होता है ॥ ७३ ॥

मधिगच्छति । श्येनो वर्तिकामुल्लापयते । श्यम्भावयति । बालमुल्लापयते वञ्चयतीत्यर्थः । सम्माननादिषु किम्-कस्त्वामुल्लापयति ॥७०॥

२३१–मिथ्योपपदात् कृञोऽभ्यासे ॥७१॥

प०–मिथ्योपपदात्=५ । १ । कृञः=५ । १ । अभ्यासे=७ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् । णेः ॥

पदा०–मिथ्या उपपदं यस्य तस्मात् । अकर्त्रभिप्रायार्थमिदम् ॥

सू०–मिथ्योपपदाण्ण्यन्तात् डुकृञ् इत्येतस्माद् धातोरात्मनेपदं भवत्यभ्यासे पुनः पुनरावृत्तिरभ्यासः । पदं मिथ्या कारयते । स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयति । मिथ्योपपदात् किम्–यथार्थं पदं कारयति । कृञः किम्–पदं मिथ्या वाचयति । अभ्यासे किम्–पदं सकृन्मिथ्या कारयति ॥ ७१ ॥

२३२–स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ॥७२॥

प०–स्वरितञितः=५ । १ । कर्त्रभिप्राये=७ । १ । क्रियाफले=७ । १ । अनु०–धातवः । आत्मनेपदम् ।

पदा०–ञ् इत् यस्य स ञित् । स्वरितश्च ञिच्चानयोस्समाहारस्तस्मात् । कर्त्रभिप्राये=कर्त्तारमभिप्रैति तस्मिन् । क्रियाफले=क्रियायाः फलं क्रियाफलं तत्र ॥

सूत्रा०-कर्तृगामिनि क्रियाफले स्वरितेतो ञितश्चात्मनेपदं भवति । यजमा-

---

भिकारा बटेरको कायर करता है । बालमुल्लापयते । बालक को ठगता है इन अर्थों में आत्मनेपद होता है । संमाननादि ग्रहण क्यों किये । कस्त्वामुल्लापयति । कौन तुम्हें बकाता है । यहां सम्माननादि अर्थों के न होने से आत्मनेपद न हुआ ॥ ७० ॥

२३१–मिथ्या शब्दोपपद णयन्त जो डुकृञ् धातु उस से आत्मनेपद होता है अभ्यास अर्थ में । बार २ आवृत्ति होना अभ्यास कहाता है । पदं मिथ्या कारयते । पद को मिथ्या कराता अर्थात् स्वरादि से दूषित बार २ बुलवाता है । मिथ्या ग्रहण क्यों किया–यथार्थं पदं कारयति । यथार्थ पदोच्चारण कराता है । कृञ् ग्रहण क्यों किया । पदं मिथ्यावाचयति । पद को बार २ मिथ्या बकवाता है । यहां वच् से आत्मनेपद न हुआ । अभ्यास ग्रहण क्यों किया–पदंसकृन्मिथ्याकारयति । पद को एकबार मिथ्या उच्चारण कराता है ॥ ७१ ॥

२३२– कर्तृगामी कर्त्ता के अभिप्राय करने वाले क्रियाफल में स्वरित और ञित् धातु से आत्मनेपद होता है । यजमानो यजते । यज्ञकर्त्ता यज्ञ का

तो यजते । देवदत्तः कुरुते । अत्र क्रियाफलं कर्तारमभिप्रैति । कर्त्रभिप्राये किम्-याजकाः यजन्ति । देवदत्तः कार्यं करोति । यद्यपि दक्षिणा वेतनं च कर्तुः फलमिदास्ति तथापि न तत् प्रधानम् न तदर्थः क्रियारम्भः ॥ ७२ ॥

२२३-अपाद्वदः ॥७३॥

प०-अपात्=५ । १ । वदः=५ । १ । अनु० धातवः । आत्मनेपदम् । कर्त्रभिप्राये । क्रियाफले ॥

सू०-कर्तृगामिनि क्रियाफलेऽपपूर्वाद् वदतेर्धातोरात्मनेपदं भवति । धनकामोऽपवदते । अन्याय भाषते इत्यर्थः । कर्तृगामिनि किम्-धनकामोऽपवदति यदा-परमन्यायं भाषते ॥ ७३ ॥

२२४-णिचश्च ॥७४॥

प०-णिचः=५ । १ । च=१ । १ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् । कर्त्रभिप्राये । क्रियाफले ॥

सू०-कर्तृगामिनि क्रियाफले णिजन्ताद्धातोरात्मनेपदं भवति । कारयते । पाचयते । कर्तृगामिनि किम्-कटं कारयति ॥ ७५ ॥

२२५-समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥७५॥

प०-समुदाङ्भ्यः=५ । ३ । यमः=५ । १ । अग्रन्थे=७ । १ । अनु०-धातवः । आत्मनेपदम् । कर्त्रभिप्राये । क्रियाफले ॥

रहा है । देवदत्तः कुरुते । देवदत्त काम कर रहा है इत्यादि प्रयोगों में कर्तृगामी क्रियाफल होने से आत्मनेपद होता है

क्योंकि यहां क्रियाफल कर्त्ता को चाहता है । कर्त्रभिप्राये क्यों कहा-याजका यजन्ति । यज्ञ कराने वाला यज्ञ कर रहा है=अर्थात् दूसरे के लिये करता है । देवदत्तः कार्यं करोति । देवदत्त काम करता है । यद्यपि यहां दक्षिणा और वेतन करने वाले को फल है तथापि वह प्रधान नहीं है और न उस के लिये क्रियारम्भ है इससे आत्मनेपद नहीं होता है ॥७२॥

२२३-कर्तृगामी क्रियाफल में अपपूर्वक वद धातु से आत्मनेपद होता है । धनकामोऽपवदते । धन की कामना करने वाला अन्याय बोलता है । कर्तृगामी क्रियाफल ग्रहण क्यों किया-धनकामोऽपवदति । धन चाहने वाला दूसरे के लिये अन्याय बक रहा है । यहां परस्मैपद होता है ॥ ७४ ॥